भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत

श्री चन्द्रावली नाटिका

प्राक्कथन लेखक
डॉ० पारसनाथ तिवारी, एम० ए०, डी० फिल्०
हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद यूनीवर्सिटी, इलाहाबाद

सम्पादक
श्री राकेश
एम० ए०

प्रकाशन केन्द्र
रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ—226007
फोन : 31858

● प्रकाशक : प्रकाशन केन्द्र,
रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ–226007
फोन : 31858
● मूल्य : सात रुपये पचास पैसे (रु० 7·50) मात्र

अपनी बात

"श्री चन्द्रावली नाटिका" भारतेन्दु जी की वैष्णवीय भक्ति-भावना का प्रतिबिम्ब है। यह नाटिका काव्य-माधुरी की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है। छात्रों की सुविधा और उपयोगिता की दृष्टि से मैंने मूल पाठ के सामने ही आवश्यक टीका-टिप्पणी और विश्लेषण पूर्ण व्याख्या दी है। अन्त में विभिन्न विश्वविद्यालयों में एम० ए० एवं साहित्य की परीक्षा में आये हुए प्रश्नों को सम्पूर्ण उत्तर के साथ दिया है। इस कृति का सम्पादन करते हुए एवं आलोचना लिखते हुए मुझे रस आया है और इसलिये मुझे यह भी विश्वास है कि इसे पढ़ते समय इसके पाठकों को भी रस आयेगा, साथ ही यह कृति छात्रों को परीक्षा के सागर से संतरण के लिये सुतरणी सिद्ध होगी।

इस कृति में जो कुछ भी मूल्यवान है, वह सुविज्ञ विद्वानों की खोज और कृपा का ही फल है। अतः उनकी निधि उन्हीं को सौंपकर सन्तोष लाभ करता हूँ।

"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मोर॥"

—राकेश

प्राक्कथन

'श्री चन्द्रावली नाटिका' भारतेन्दु जी को अपनी समस्त रचनाओं में सर्वाधिक प्रिय थी। कारण यह है कि इसमें जहाँ एक ओर उनकी निजी वैष्णव भक्ति-भावना पल्लवित हुई है वहीं दूसरी ओर काव्यमाधुरी की दृष्टि से भी यह उत्कृष्ट कोटि की रचना बन गई है। नाट्यकला की दृष्टि से इसमें कुछ कमियाँ अवश्य हैं किन्तु इसकी रसमयता में कोई सन्देह नहीं।

लेखक ने छात्रों की सुविधा और उपयोगिता की दृष्टि से मूल पाठ के सामने ही आवश्यक टिप्पणी तथा विश्लेषण से युक्त व्याख्या दे दी है और अंत में इस कृति का आलोचनात्मक अध्ययन किया है जिसके अन्तर्गत नाटिका की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, अभिनेयता, रस निष्पत्ति, प्रेम-भक्ति-चित्रण, भाषा तथा नाट्यकला आदि की दृष्टि से समीक्षा की गई है और यह समीक्षाएँ विभिन्न विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में पूछे गये या संभावित प्रश्नों के उत्तर रूप में हैं, अतः निश्चय ही आज के विद्यार्थी-वर्ग के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी।

(डॉ०) पारसनाथ तिवारी

अनुक्रमण

प्रस्तावना

'चन्द्रावली नाटिका' हिन्दी की पहली रचना है, जिसमें स्त्री-प्रेम का चित्रण इतने विशद एवं स्वस्थ रूप में हुआ है। भारतेन्दु जी की भक्ति-भावना का विकसित स्वरूप 'चन्द्रावली नाटिका' में अभिव्यक्त हुआ है। चन्द्रावली का प्रेम अलौकिक है—

"इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है।"

—समर्पण (चन्द्रावली नाटिका)

'चन्द्रावली' के कथानक में भारतेन्दु की मौलिक कल्पना सामने आती है। राधा-कृष्ण के प्रेम का परम्परा से वर्णन हुआ है। चन्द्रावली को केवल राधा की एक सखी के रूप में स्थान दिया गया, परन्तु भारतेन्दु ने उसे कृष्ण की प्रेमिका के रूप में चित्रित कर सर्वथा नवीन उद्भावना की।

'चन्द्रावली नाटिका' भारतेन्दु की वैष्णवीय भक्ति-भावना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। भारतेन्दु राधा-कृष्ण की युगल-मूर्ति के उपासक थे और वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति के भक्त थे। चन्द्रावली में जो विरह की तीव्रता है, वह भक्ति का आवश्यक अंग बन गई है।

'चन्द्रावली नाटिका' में भारतेन्दु की बहुमुखी भावनाओं का प्रकाशन उत्कृष्ट कलात्मक आवरण में हुआ है। 'चन्द्रावली नाटिका' के आवरण पृष्ठ पर परिचय देते हुए भारतेन्दु जी ने लिखा है—

"काव्य सुरस सिंगार के, दोउ दल कविता नेम।
जग-जग सों कै ईस सों, कहियत जेहि पर प्रेम॥
हरि उपासना, भक्ति, वैराग्य, रसिकता ज्ञान।
सोधैं जग-जन मानि या चंद्रावलिहि प्रमान॥"

उक्त कथन के अनुसार 'चन्द्रावली नाटिका' में भारतेन्दु जी ने प्रेम तथा अपनी भक्ति-भावना का निरूपण किया है। प्रेम, विरह तथा भक्ति की त्रिवेणी इसमें प्रवाहित हुई है। भावानुभूति के साथ-साथ चन्द्रावली में काव्य एवं नाट्य-कौशल भी उच्च कोटि का है।

कथावस्तु

'श्री चन्द्रावली नाटिका' की कथावस्तु बहुत संक्षिप्त है। संक्षेप में कथानक निम्न प्रकार है—

यवनिका उठते ही नारद शुकदेव से कृष्ण के प्रति चन्द्रावली के अनन्य प्रेम और भक्ति की प्रशंसा करते हैं। चन्द्रावली जिस तन्मयता से कृष्ण पर अनुरक्त है, कृष्ण भी उतनी ही अधिक उत्कंठा के चन्द्रावली को प्रेम करते हैं, परन्तु ब्रज-स्वामिनी राधा के संकोच के कारण वे चन्द्रावली से मिल नहीं पाते। इधर चन्द्रावली कृष्ण के वियोग में सब कुछ भूल कर तड़पती है। वह सब कुछ भूल जाती है। वियोग में प्रलाप करती हुई वह विक्षिप्तावस्था को पहुँच जाती है। वह कृष्ण के पास पत्र भेजती है। उसकी सखियाँ माधवी, काममंजरी और विलासिनी क्रमशः स्वामिनी राधा, कृष्ण और चन्द्रावली के घर वालों को दोनों के मिलने के हेतु मनाने का कार्य अपने ऊपर लेती हैं।

अन्त में कृष्ण चन्द्रावली के यहाँ योगिन के वेश में जाते हैं और उसकी प्रेम-विह्वलता से द्रवित होकर साक्षात् रूप में दर्शन देते हैं। इसी समय विशाखा आकर सूचना देता है कि ब्रज-स्वामिनी राधा ने दोनों के मिलन की अनुमति दे दी है। कृष्ण और चन्द्रावली गलबाहीं डालकर बैठते हैं और सखियाँ युगल मूर्ति का अभिनन्दन करती हैं।

चन्द्रावली सफल प्रेमनाटिका है

'चन्द्रावली' सफल प्रेमनाटिका है। इसका वस्तु-विन्यास 'प्रेमनाटिका' के लक्षणों के अनुसार हुआ है। एक सफल प्रेमनाटिका की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

१. प्रेम-नाटिका की कथा कवि-कल्पित होती है।

२. इसके चार अंक होते हैं।

३. नायक धीर ललित होता है, जो गायन-प्रवीण अनुरागवती राजवंश से सम्बन्ध रखने वाली कन्या राजकुमारी से प्रेम करता है।

४. नायक की विवाहिता पत्नी मान करती है, जिसके कारण नायक अपनी प्रेमिका से स्वच्छन्द मिलन का अवसर नहीं पाता। अन्त में उसकी अनुमति से दोनों का मिलन होता है।

५. प्रेम-नाटिका में अधिकांश पात्र स्त्रियाँ होती हैं।

६. प्रेम-नाटिका में प्रधान रस श्रृंगार-रस होता है और कैशिकी वृत्ति के विभिन्न रूपों का इसमें समावेश होता है। विमर्श संधि को छोड़कर शेष सभी संधियाँ होती हैं और यदि विमर्श संधि होती भी है तो नाम मात्र को।

'चन्द्रावली नाटिका' की कथा कवि-कल्पित है। चन्द्रावली का उल्लेख राधा की सखी के रूप में ही हुआ है। 'चन्द्रावली नाटिका' में उसे नायिका का पद मिलना सर्वथा मौलिकता है। इस नाटिका में चार अंक हैं। केवल दूसरे अंक के अन्तर्गत एक अंकावतार है। इसके नायक कृष्ण धीर ललित नायक हैं। राजा चन्द्रभान की पुत्री चन्द्रावली गायन में प्रवीण और अनुरागवती है। विवाहिता राधा के मान का प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप में नहीं आता, किन्तु तीसरे अंक में माधवी स्वामिनी को मनाने की बात कहती है और चौथे अंक में आकर विशाखा यह सूचना भी देती है कि "स्वामिनी ने आज्ञा दई है कि प्यारे से कहि दै, चन्द्रावली के कुंजन में सुखेन पधारो।" यहाँ राधा के मान और कृष्ण-चन्द्रावली के मिलन में उनकी अनुमति का दिग्दर्शन हो जाता है। इस नाटिका में प्रायः सभी पात्र स्त्रीयाँ ही हैं। केवल विष्कंभक में शुकदेव और नारद पुरुष पात्र हैं। विष्कंभक के पश्चात वे कहीं भी कथानक में नहीं आते। कृष्ण कथानक के अन्त में आते हैं किन्तु वे भी योगिन के वेश में।

श्रृंगार-रस के वियोग-पक्ष का पूर्ण परिपाक 'चन्द्रावली नाटिका' में हुआ है। गीत और विलास दो कैशिकी वृत्तियों का भी समावेश है। सारे कथानक में गीतों की प्रधानता है। दूसरे अंक में विलास-भावना व्यक्त हुई है।

'चन्द्रावली' के कथानक में नाटकीय संधियों का निर्वाह हुआ है। विष्कंभक में नारद और शुकदेव के वार्तालाप में चंद्रावली के प्रेम की सूचना मिल जाती है, यहाँ बीज अर्थ-प्रकृति है। प्रथम अंक में चंद्रावली और ललिता की

बातचीत और दूसरे अंक में चंद्रावली के प्रलाप में **बिन्दु अर्थ-प्रकृति** है। तीसरे अंक में झूला झूलने के प्रसंग में **प्रकरी अर्थ-प्रकृति** है। चौथे अंक में चन्द्रावली के हृदय में यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि योगिन के वेश में कहीं कृष्ण ही तो नहीं हैं, यहाँ से **कार्य अर्थ-प्रकृति** प्रारम्भ होती है।

प्रथम अंक में ललिता और चन्द्रावली की बात-चीत के प्रारम्भ में **प्रारम्भावस्था और मुख सन्धि**, दूसरे अंक में ललिता की चन्द्रावली के प्रति सहानुभूति और अंकावतार में कृष्ण के पास पत्र भेजने के प्रकरण में **प्रयत्नावस्था और प्रतिमुख सन्धि** है। तीसरे अंक में सखियों द्वारा चन्द्रावली को धीरज बँधाने में **प्राप्त्याशा और गर्भ सन्धि** है। इसी अंक में काममंजरी, माधवी और विलासिनी जहाँ चन्द्रावली को कृष्ण से मिलाने की प्रतिज्ञा करती हैं, वहाँ **नियताप्ति अवस्था और विमर्श सन्धि** का हलका पुट है। चौथे अंक में चन्द्रावली के मूर्च्छित होने और कृष्ण के उसे गोद में सम्हाल लेने में **फलागम अवस्था और निर्वहण सन्धि** हो जाती है।

'चन्द्रावली नाटिका' में प्रस्तावना, नान्दी पाठ तथा अन्त में भरतवाक्य शास्त्रीय दृष्टि से उपयुक्त हैं। इस प्रकार प्रेम-नाटिका की कसौटी पर 'चन्द्रावली नाटिका' सफल है। शास्त्रीय दृष्टि से अंक प्रारम्भ होने के प्रथम दृश्य में ही विष्कम्भक का प्रयोग नहीं होना चाहिए था।

'चन्द्रावली नाटिका' की कथावस्तु का संगठन-प्रेम, विरह तथा मिलन में आ है। कथानक में अनुराग, प्रकृति और काव्य की अविराम धारा प्रवाहित हुई है। परन्तु काव्य तत्व और रसात्मकता के कारण कथानक-प्रवाह और नाटकीय व्यापार में आघात नहीं पहुँचता। वस्तु-विन्यास भारतीय नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों पर घटित होते हुए भी पाश्चात्य नाट्यकला से प्रभावित है। समय, स्थान और कार्य-सम्बन्धी संकलन-त्रय का निर्वाह हुआ है।

कथानक का आधार और केन्द्र-बिन्दु चंद्रावली का चरित्र है। चंद्रावली कथानक की नायिका है। आद्यान्त चंद्रावली के चरित्र के विकास में ही कथानक का प्रारम्भ, पल्लवन और समाप्ति है। कथानक में आये हुए अन्य

पात्रों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उनकी स्थिति चन्द्रावली के चरित्र को प्रकाशित करने के लिए ही है।

रस योजना

'चन्द्रावली' में विप्रलंभ-शृंगार की प्रधानता है। संयोग-शृंगार के स्मृति मात्र का चित्रण हुआ है, जो वियोग को अधिक उद्दीप्त कर देता है। अन्य रसों में शान्त रस केवल विष्कम्भक में ही आया है और हास्य-रस की झाँकी सखियों के हास-परिहास में मिल जाती है। विप्रलंभ शृंगार में चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति **प्रेम या रति** स्थायी भाव है। कृष्ण आलम्बन हैं। **आलम्बन** में **श्रवन, दर्शन और प्रत्यक्ष-दर्शन** है। सखियाँ, वन, उपवन, हिंडोला आदि उद्दीपन हैं। रस की पोषक चन्द्रावली आशय है। अनेक **सञ्चारी भाव** तथा विरहावस्थाओं में अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप आदि का निरूपण हुआ है।

विरह के पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण चार प्रकार माने गये हैं। **ब्रजरत्न दास ने चन्द्रावली के विरह को पूर्वराग माना है। परन्तु** 'चन्द्रावली नाटिका' के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रावली का कृष्ण से मिलन हो चुका है और वियोग संयोग के पश्चात् ही हुआ है। वियोग का कारण राधा का मान तथा अन्य परिस्थितियाँ हैं। अतः चन्द्रावली के विरह को **प्रवास-जन्य** ही मानना युक्ति-संगत होगा। **प्रवास** के लिये यह आवश्यक नहीं है कि प्रियतम दूर देश में ही रहे। गोपियों के कृष्ण उनसे बहुत दूर नहीं थे, परन्तु उनका वियोग चरमसीमा पर पहुँचा हुआ प्रवास-जन्य ही है। चन्द्रावली के विरहोद्गार स्पष्ट करते हैं कि वियोग से पहले उसका कृष्ण से मिलन हो चुका था। तभी तो वह पहले के मिलन-प्यार की दुहाई देती है। कृष्ण उससे नित्य मिलते थे और प्यार करते थे, परन्तु अब रूठ कर उसका मुख देखते ही दूर भागते हैं—

"मन मोहन सों बिछुरी जब तें,
तन आँसुन सों सदा धोवति हैं।

हरिचन्द्र जू प्रेम के फन्द परी,
कुल की कुल लाजहि खोवति हैं ॥"

+ + +

"कितकों ढरिगौ वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
हरिचन्द भये हो कहा के कहा,
अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ ॥
नित को मिलिनों तो किनारे रह्यौ,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाय बढ़ाय कै नेह,
न रूसिवे में अब लाजत हौ।"

विरह का बड़ा ही मार्मिक वर्णन 'चन्द्रावली नाटिका' में हुआ है। प्रलापजनित विरह से तो सारी नाटिका भरी पड़ी है। चन्द्रावली जायसी की नागमती और नन्ददास की गोपियों की तरह कदम्ब, अम्ब, निम्ब, आदि से प्रियतम का पता पूछती फिरती है। वह जड़-चेतन का अन्तर भी भूल जाती है—

"अहो अहो बन के रुख कहुँ देख्यो पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुड़ाय कहो वह कितै सिधारो ॥
अहो कदम्ब, अहो अम्ब-निब, अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यो कहूँ मन-मोहन सुन्दर नन्दलाला ॥

चन्द्रावली का विरह-वर्णन भारतेन्दु साहित्य में सर्वोत्कृष्ट होने के साथ-साथ हिन्दी साहित्य के विरह-वर्णनों में भी एक उच्च स्थान रखता है।

प्रकृति-वर्णन

'चन्द्रावली' में प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में हुआ है। यमुना-वर्णन स्वतन्त्र रूप में होने पर भी अलंकारों के भार से दब गया है। वह यमुना की प्राकृतिक सुषमा का यथार्थ चित्र सामने लाने में असफल रहता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि 'चन्द्रावली' में सारी प्रकृति वियोग को उद्दीप्त करने के लिए आई है। चन्द्रावली को काले बादल देखकर कृष्ण की, इन्द्र-धनुष से

वनमाला की, बक पंक्तियों से मोतीमाला की, कोयलों की ध्वनि से मुरली-नाद की स्मृति बारम्बार आती है। वर्षा तो उसके प्राणों की गाहक ही बन जाती है।

भक्ति-भावना और जीवन-दर्शन

'चन्द्रावली नाटिका' में भारतेन्दु जी ने अपनी अनुराग रंजित-भक्ति-भावना का परिचय दिया है। भारतेन्दु का जीवन प्रेम और विरह की मार्मिक कथा है। उनके विरह और प्रेम-जनित वेदना का ज्वार ही 'चन्द्रावली' में फूट पड़ा है। भारतेन्दु जी प्रेम-निष्णात वैष्णव भक्त थे। उन्होंने कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम का निरूपण किया है। 'चन्द्रावली नाटिका' उनके जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत हुई है। 'चन्द्रावली' में वर्णित प्रेम का स्वरूप भक्ति में काम-रूपा अंग के अन्तर्गत है। 'समर्पण' में भारतेन्दु जी ने अपने प्रेम और भक्ति-सिद्धान्त का निरूपण किया है—

"इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है।"

'नांदीपाठ' में भारतेन्दु का निम्न कथन उनकी भक्ति-भावना को पुष्ट करता है—

"नेति-नेति तत् शब्द-प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चन्द्रावली चकोर श्री कृष्ण करो कल्यान।"

चन्द्रावली का प्रेम वल्लभ-सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना के अनुरूप है। यह भक्तों को लौकिक धरातल से उठाकर आध्यात्मिक धरातल पर ले जाने वाला है। पुष्टिमार्गीय प्रेमा-भक्ति के स्वरूप और महात्म्य को प्रतिपादित करते हुए भारतेन्दु जी विष्कंभक में शुकदेव जी से कहलाते हैं—

वह जो परम प्रेम अमृतमय एकांत भक्ति है, जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान-विज्ञानादिक अंधकार नाश हो जाते हैं और जिसके चित्त में आते ही संसार का निगड़ आप से आप खुल जाता है—वह किसी को नहीं मिली; मिले कहाँ से? सब इसके अधिकारी भी तो नहीं हैं।............
नहीं-नहीं, ब्रज गोपियों ने उन्हें जीत लिया है, आहा! उनका कैसा विलक्षण प्रेम है कि—अकथनीय और अकरणीय है, क्योंकि जहाँ माहात्म्य ज्ञान होता

है, वहाँ प्रेम नहीं होता और जहाँ पूर्ण प्रीति होता है, वहाँ महात्म्य-ज्ञान नहीं होता ।''

भारतेन्दु के परिवार में युगल-मूर्ति की उपासना होती थी । इसी के अनुसार कृष्ण और चन्द्रावली के गलबाहीं डाले युगल रूप की उपासना में कथानक का अन्त होता है—

''जुगल रूप छवि अमित माधुरी
रूप सुधा रस-सिन्धु बहौरी ।
इनहीं सौं अभिलाख लाख करि,
इक इनहीं कों नितहिं चहौरी ।
जो नर तनहिं सफल करि चाहौ,
इनहीं के पद कंज गहौरी ।।

भरतवाक्य में भी युगल मूर्ति के दर्शन से मोक्ष और परमानन्द प्राति का वर्णन है—

''हमारी तो सब इच्छाओं की अवधि आपके दर्शन ताँई है ।''

इस प्रकार 'चन्द्रावली नाटिका' में वल्लभ सम्प्रदायी पुष्टि-मार्गी प्रेम-लक्षणा रागानुगत भक्ति की कामरूपा भक्ति के अन्तर्गत युगल-मूर्ति की उपासना का प्रतिपादन हुआ है ।

भावपक्ष और अभिव्यक्ति-कौशल

'चन्द्रावली नाटिका' प्रेम, विरह और मिलन की भावनाभूति से आद्यन्त ओत-प्रोत है । भावनाभूति में वियोग-वर्णन की प्रधानता है । वर्षा और हिंडोले आदि के वर्णन ने वियोगाभूति को तीव्रता प्रदान की है । उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों के द्वारा प्रकृति के व्यापारों को उद्दीपन रूप प्रदान किया गया है—

''देख, भूमि चारों ओर हरी-भरी हो रही है । नदी, नाले, बावली, तालाब सब भर गये । पक्षी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं । नदियों के करारे धमाधम टूटकर गिरते हैं । सर्प निकल-निकल अशरण से इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं । मार्ग बन्द हो रहे हैं । परदेशी जो

जिस नगर में हैं, वहीं पड़े पछता रहे हैं, आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो छोटा प्रलय-काल ही आया है।''

चन्द्रावली नाटिका में भावानुभूति की प्रधानता है। कलापक्ष चमत्कारवादी काव्य-कौशल को प्रदर्शित करने के लिये आया है। सानुप्रासिक सौन्दर्य-विधान के प्रति भी भारतेन्दु का अनुराग दिखाई पड़ता है। समस्त वर्णनों में अलंकार-प्रियता और शब्द-मैत्री की प्रवृत्ति मिलती है।

भाषा की दृष्टि से 'चन्द्रावली नाटिका' में भारतेन्दु जी ने नवीन प्रयोगों के द्वारा पथ-प्रदर्शन किया है। इस नाटिका में ब्रज तथा खड़ी बोली दोनों का ही सौन्दर्य यत्र-तत्र मिलता है। चन्द्रावली तथा वनदेवी का कथोपकथन देखिए—

चन्द्रावली : (आँख बन्द किये हो) हाँ-हाँ अरी क्यों चिल्लाय है ? चोर भाग जायगो।

वनदेवी : कौन सौ चोर ?

चन्द्रावली : माखन को चीर चीरन को चोर और मेरे चिद का चोर ।

वनदेवी : सो कहाँ सो भाग जायगो ?

चन्द्रावली : फेर बके जाय है। अरी मैंने अपनी आँखों में मूँदि राख्यौ है, सो तू चिल्लायगी, तो निकसि भागैगो।

\+ \+ \+

चन्द्रावली : (जल्दी से उठ, वनदेवी का हाथ पकड़ कर) कहो प्राणनाथ ! अब कहाँ जाओगे ?

'चन्द्रावली नाटिका' की भाषा की मधुरता और सरलता ने ही उसे जन प्रिय रूप प्रदान किया है। 'चन्द्रावली नाटिका' में भावुकता का तीव्र ज्वार-कहीं-कहीं संवादों को असंयत बना देता है। कहीं-कहीं पर संवाद बहुत लम्बे हो गये हैं, परन्तु सारे कथोपकथन अनुभूतिपूर्ण और मार्मिक हैं। वे कथा को आगे बढ़ाने में सहायक हैं। चन्द्रावली और वनदेवी का निम्न संवाद कृष्ण के प्रेम में उन्मादिनी हुई चन्द्रावली की मनोदशा को भली प्रकार स्पष्ट कर देता है—

वनदेवी : (हाथ पकड़कर) कहाँ चली सजि कै ?—

चन्द्रावली : पियारे सों मिलन काज—

वनदेवी : कहां तू खड़ी है ?
चन्द्रावली : प्यारे ही को यह धाम है।
वर्षा : कहा कहै मुख सों ?—
चन्द्रावली : पियारे प्रान प्यारे,—
वनदेवी : कहा काज है ?
चन्द्रावली : पियारे सो मिलन मोहि काम है।
वनदेवी : मैं हूं कौन बोल तौ ?
चन्द्रावली : हमारे प्रान-प्यारे हौ न ?
वनदेवी : तू है कौन ?
चन्द्रावली : प्रियतम पियारो मेरो नाम है।

संवादों में आद्यान्त प्रेम की रसमय धारा प्रवाहित हुई है। भावमय काव्यधारा का मधुर कवित्तों और सवैयों में अजश्र प्रवाह चलता रहता है। 'चन्द्रावली' के गीत बड़े ही मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण हैं। संवादों के बीच में काव्यात्मक संगीत ने नाटिका के सौन्दर्य को बढ़ा दिया है। कलात्मक दृष्टि से अधिकांश छन्दों की योजना केवल चमत्कार तथा अलंकारिकता के प्रदर्शन के लिए हुई है। सवैया और घनाक्षरी छन्दों में ब्रज भाषा का माधुर्य पूर्ण परिपक्व रूप में मिलता है। 'चन्द्रावली नाटिका' में संगीत का विशेष आकर्षण है। संगीतात्मक पद रंगमंचीय अभिनय को सरस बनाने में सहायक हैं।

रंगमंच की दृष्टि से 'चन्द्रावली नाटिका' में अनेक दोष हैं। संवादों का अति-विस्तार, गीतों का लम्बाई और उनकी भरमार और जटिल दृश्य-विधान रंगमंच की दृष्टि से अनुपयुक्त हैं। रंगमंच पर वृक्षादि तथा झूला दिखाना नितान्त असम्भव है। सत्य यह है कि 'चन्द्रावाली' का काव्यात्मक रचना की दृष्टि से ही महत्व अधिक है। यह भारतेन्दु जी की अप्रतिम नाट्य-रचना है।

श्री चन्द्रावली नाटिका

काव्य, सुरस सिंगार के, दोउ दल कविता नेम ।
जन जन सों कै ईस सों, कहियत जेहि पर प्रेम ॥
हरि उपासना, भक्ति, वैराग, रसिकता ज्ञान ।
सोधैं जग जन मानि या, चन्द्रावलिहि प्रमान ॥

संवत १९३३

"भारतेन्दु जी ने 'चन्द्रावली नाटिका' के मुख पृष्ठ के छन्द में अपना बहुमुखी उद्देश्य घोषित किया है। कविता का श्रृंगार इसी में है कि वह विश्व प्रेम या ईश्वर प्रेम की ओर उन्मुख करे उनकी इस 'चन्द्रावली नाटिका' में 'हरि उपासना', 'भक्ति,' 'वैराग्य', 'रसिकता', ज्ञान आदि सभी कुछ है।"

समर्पण

प्यारे !

लो, तुम्हारी चंद्रावली तुम्हें समर्पित है। अंगीकार तो किया ही है, इस पुस्तक को भी उन्हीं की कानि से अंगीकार करो ! इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है। इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है। हाँ, एक अपराध तो हुआ जो अवश्य क्षमा करना होगा। वह यह कि यह प्रेम की दशा छापकर प्रसिद्ध की गई। वा प्रसिद्ध करने ही से क्या जो अधिकारी नहीं हैं उनके समझ ही में न आवेगा।

तुम्हारी कुछ विचित्र गति है। हमीं को देखो। जब अपराधों को स्मरण करो तब ऐसे कि कुछ कहना ही नहीं। क्षण भर जीने के योग्य नहीं। पृथ्वी पर पैर धरने की जगह नहीं। मुँह दिखाने के लायक नहीं। और जो यों देखो तो यह लम्बे-लम्बे मनोरथ। यह बोलचाल, यह ढिठाई कि तुम्हारा सिद्धान्त कह डालना। जो हो, इस दूध-खटाई की एकत्र स्थिति का कारण तुम्हीं जानो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैसे हों तुम्हारे बनते हैं। अतएव क्षमा-समुद्र ! क्षमा करो। इसी में निर्वाह है। बस—

भाद्रपद कृष्ण १४ — हरिश्चन्द्र

सं० १९३३

श्री चन्द्रावली नाटिका

प्रस्तावना

स्थान—रंगशाला

[ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया।]

भरति नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति पूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥ १ ॥
नेति-नेति तत्-शब्द प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चंद्रावली-चकोर श्रीकृष्ण करो कल्याण ॥ २ ॥

[सूत्रधार आता है]

सूत्रधार : बस बस, बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं। मारिष ! मरिष !! दौड़ो दौड़ो, आज ऐसा अच्छा अवसर फिर न मिलेगा। हम लोग अपना गुण दिखाकर आज निश्चय कृतकृत्य होंगे।

[पारिपार्श्वक आकर]

पारिपार्श्वक : कहो कहो, आज क्यों ऐसे प्रसन्न हो रहे हो ? कौन सा नाटक करने का विचार है और उसमें ऐसा कौन सा रस है कि फूले नहीं समाते ?

सूत्रधार : आः, तुमने अब तक नहीं जाना ? आज मेरा विचार है कि इस समय के बने एक नए नाटक की लीला करूँ। क्योंकि संस्कृत नाटकों को अपनी भाषा में अनुवाद करके तो हम लोग अनेक बार खेल चुके हैं, फिर बारंबार उन्हीं के खेलने को जी नहीं चाहता।

पारिपार्श्वक : तुमने बात तो अच्छी सोची, वाह क्यों न हो; पर यह तो कहो कि वह नाटक बनाया किसने है ?

सूत्रधार : हम लोगों के परम मित्र हरिश्चंद्र ने।

टिप्पणी और व्याख्या

[पृष्ठ १४]

चन्द्रावली—कृष्ण की प्रेमिका और कथानक की नायिका है। इसी के नाम पर नाटिका का नामकरण है। पूर्ववर्ती कृष्ण साहित्य में राधा को प्रधानता देकर चन्द्रावली को राधा की सखी के रूप में स्थान दिया गया था। भारतेन्दु जी ने चन्द्रावली को कृष्ण की प्रेमिका और कथानक की नायिका बनाकर मौलिकता का परिचय दिया है।

नाटिका—नाट्य भेदों का एक विभेद है। इसके लक्षण हैं :—१. इसमें चार अंक होते हैं। २. स्त्री पात्रों की अधिकता होती है। ३. नायक जेष्ठा नायिका के वशवर्ती होता है। ४. जेष्ठा मान करती है। ५. नायिका परकीया होती है। ६. नायिका और नायक का मिलन जेष्ठा की स्वीकृति और अनुग्रह से होता है।

रंगशाला—नाटक खेलने का स्थान।

"भरति नेह·······कल्यान।"

यह मंगलाचरण या नांदी है। मंगलाचरण वस्तु निर्देशात्मक, नमस्कारात्मक और आशीर्वादात्मक तीन प्रकार का होता है। 'जयति' शब्द से स्पष्ट है कि मंगलाचरण आशीर्वादात्मक है।

नेह नव नीर—प्रेम रूपी नया जल अर्थात् जो प्रेम नित नवीन बना रहता है। **अथोर**=बहुत अधिक। **अलौकिक**=दिव्य, लोकोत्तर। **मनमोर**=मेरा मन, मन रूपी मोर। **नेति नेति**=जिसका आदि अन्त ज्ञात नहीं है।

तत्-शब्द-प्रतिपाद्य—तत्=ब्रह्म, परमात्मा। प्रतिपाद्य=जिसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं। सर्व=पूर्ण। **चन्द्रावली चकोर**=जिसके लिए चन्द्रावली चकोर है।

पारिपार्श्वक : (मुँह फेरकर) किसी समय तुम्हारी बुद्धि में भ्रम हो जाता है। भला वह नाटक बनाना क्या जानै ? वह तो केवल आरम्भ-शूर है और अनेक बड़े-बड़े कवि हैं, कोई उनका प्रबन्ध खेलते।

सूत्रधार : (हँसकर) इसमें तुम्हारा दोष नहीं, तुम तो उससे नित्य नहीं मिलते, जो लोग उसके संग में रहते हैं वे तो उसको जानते ही नहीं, तुम बिचारे क्या हो।

पारिपार्श्वक : (आश्चर्य से) हाँ, मैं तो जानता ही न था, भला कहो उनके दो चार गुण मैं भी सुन सकता हूँ ?

सूत्रधार : क्यों नहीं, पर जो श्रद्धा से सुनो तो।

पारिपार्श्वक : मैं प्रति रोम को कर्ण बनाकर महाराज पृथु हो रहा हूँ, आप कहिए।

सूत्रधार : (आनन्द से) सुनो—

परम-प्रेमनिधि रसिक बर, अति उदार गुन-खान।
जग-जन रंजन आसु-कवि, को हरिचंद समान॥
जिन श्रीगिरिधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस।
ता-सुत श्रीहरिचंद को, को न नवावै सीस॥
जग जिन तृन-सम करि तज्यौ, अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों, आचमन, लीजत वाको नाँव॥
चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत के नेम।
यह दृढ़ श्रीहरिचंद को, टरै न अविचल प्रेम॥

पारिपार्श्वक : वाह-वाह ! मैं ऐसा नहीं जानता था, तब तो इस प्रयोग में देर करनी ही भूल है।

[नेपथ्य में]

श्रवन-सुखद भव-भय-हरन त्यागिन को अत्याग।
नष्ट-जीव बिनु कौन हरि-गुन सौं करै विराग।
हम सौंहू तजि जात नहिं, परम पुन्य फल जौन।
कृष्ण-कथा सौं मधुरतर, जग मैं भाखौ कौन ?॥

अर्थ—उस अपूर्व तथा चमत्कारिक जलधर की जय हो, जो नित्य नूतन नेह-जल से भरा रहता है और प्रचुर परिमाण में रस की वृष्टि करता है। जिसे देखकर मेरा मन रूपी मयूर नाचने लगता है।

जिन श्री कृष्ण का आदि-अन्त नहीं है, जो तत् की संज्ञा से उपनिषद् में प्रमाणित किये गये हैं, जो ईश्वर के स्वरूप हैं और चन्द्रावली के चकोर हैं, वे श्री कृष्ण कल्याण करें।

अलंकार—'मन मयूर' और चन्द्रावली-चकोर में रूपक अलंकार।

सूत्रधार—नाटक का परिचायक सूत्रधार कहलाता है। यह नाटक की परिचयात्मक भूमिका प्रस्तुत करता है। नाटक के सारे सूत्र इसी के हाथ में होते हैं, इसीलिए इसका नाम सूत्रधार है।

मारिष—यह महात्मा या प्रतिष्ठित माननीय व्यक्ति होता है, परन्तु भारतेन्दु जी ने इसके लिए "दौड़ो-दौड़ो" शब्द का प्रयोग करके इसके प्रतिष्ठित अर्थ में बाधा डाली है।

पारिपार्श्वक—यह सूत्रधार का सहायक होता है।

(पृष्ठ १६)

आरम्भ-शूर—किसी काम के आरम्भ में उत्साह दिखाने वाला और फिर उससे विमुख हो जाने वाला व्यक्ति—आरम्भिक कोटि का लेखक, जिसने अभी लिखना ही प्रारम्भ किया है।

"मैं प्रति रोम को कर्ण बनाकर महाराज पृथु हो रहा हूँ, आप कहिए।"

राजा वेणु के पुत्र का नाम पृथु था, जिसने पृथ्वी को दुहा था। वह बड़ा धर्मात्मा और उदात्त वृत्तियों वाला था। पृथ्वी को उसी की कन्या कहा जाता है। यहाँ पृथु का प्रयोग धार्मिक और विस्तार दोनों के लिये हुआ है—अर्थात् मैं अपने रोम-रोम को श्रवणेन्द्रिय बनाकर महाराज पृथु के समान तुम्हारी वार्ता सुन रहा हूँ।

"परम-प्रेमनिधि·····················अविचल प्रेम।"

जन-जन-रंजन—संसार के मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला। आशु कवि = शीघ्र ही कविता रचने वाला। "करि··········नांव" = गुलाब जल से

सूत्रधार : सुनकर आनन्द से अहा ! वह देखो, मेरा प्यारा छोटा भाई शुकदेव जी बन कर रंगशाला में आता है और हम लोग बातों ही से नहीं सुलझे। तो अब मारिष ! चलो, हम लोग भी अपना अपना वेश धारण करें।

पारिपार्श्वक : क्षण भर और ठहरो, मुझे शुकदेव जी के इस वेष की शोभा देख लेने दो, तब चलूंगा ।

सूत्रधार : सच कहा, अहा ! कैसा सुन्दर बाना है, वाह मेरे भाई वाह ! क्यों न हो, आखिर तो मुझ रंगरंजक का भाई है ।

अति कोमल सब अंग रंग साँवरो सलोना।
घूँघर वाले बालन पै बलि वारौं टोना ।।
भुज बिसाल, मुख चन्द झलमले, नैन लजौंहैं।
जुग कमान सी खिची गड़त हिय में दोउ भौंहैं ।।
छबि लखत नैन छिन नहिं टरत शोभा नहिं कहि जात है ।
मनु प्रेम-पुंज ही रूप धरि आवत आजु लखात हैं।

तो चलो, हम भी अपने-अपने स्वाँग सजाकर आवें।

[दोनों जाते हैं]

।। इति प्रस्तावना ।।

मुख धोकर जिसका नाम लेना चाहिए। अर्थात् उसका नाम पवित्र समझकर लेना चाहिए। अविचल = अटल।

अर्थ—यहाँ भारतेन्दु जी ने अपने व्यक्तित्व और स्वभाव के प्रति गर्वोक्ति की है। प्रेम के निधि सहृदय रसिक जो अति उदार तथा समस्त गुणों से परिपूर्ण हैं, जो सबके चित्त को प्रसन्न करने वाले हैं तथा तत्काल कविता रचने वाले आशु कवि हैं, उन हरिश्चन्द्र के समान और ऐसा कौन गुणवाला है। जिन गिरिधरदास कवि ने चालीस उत्तम ग्रन्थों की रचना की है, उनके पुत्र हरिश्चन्द्र को कौन श्रद्धा से शीश नहीं नवाता। जिन्होंने प्रेम के वशीभूत होकर संसार को तृणवत् समझा है, उनका नाम गुलाब जल के आचमन कर श्रद्धा के साथ लीजिए। चन्द्र तथा सूरज के समान अटल नक्षत्र चाहे अपना स्थान छोड़ दें, परन्तु हरिश्चन्द्र का अविचल प्रेम-पालन-नियम नहीं टाल सकता है।

अलंकार—उपमा, काव्यलिंग।

नेपथ्य—रंगशाला के पीछे का भाग नेपथ्य कहलाता है। यहाँ हर नाटक के पात्र अपनी वेशभूषा को ठीक करते हैं और बदलते हैं। किसी बात की सूचना नेपथ्य से ही दी जाती है।

"स्रवन सुखद············भाखौं कौन।"

त्यागिन को अत्याग—त्यागियों के लिए न त्यागने योग्य अर्थात् जिसे त्यागी भी नहीं छोड़ते। नष्ट जीव = जिसकी जीवात्मा नष्ट हो गयी है; पातकी। जौन = जोकि। भाखौं = वर्णन करना।

अर्थ—श्री कृष्ण का गुण-वर्णन कानों को सुख पहुँचाने वाला तथा सांसारिक भय को दूर करने वाला है। वह विरक्तों को प्रिय है। केवल पापी ही उसकी अनुरक्ति से विमुख रहते हैं। श्री कृष्ण की कथा से अधिक माधुर्य संसार की किसी वस्तु में नहीं है। मुझसे उस कथा के श्रवण का परम फल तजा नहीं जाता।

[पृष्ठ १८]

रंगरंजक = रंगरेज, रंगने वाला।

अति कोमल·········लखात है॥

सलोना—लावण्य से भरा हुआ। टोना—जादू। मुख चन्द झलमले = जिसका मुख चन्द्रमा के समान ज्योतित है। स्वांग = भेष, नकल।

अथ विष्कम्भक

[आनन्द में झूमते हुए डगमगी चाल से शुकदेव जी आते हैं]

शुकदेव जी : (स्रवन सुखद इत्यादि फिर से पढ़कर) अहा ! संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त कोई मतमतान्तर के झगड़े में मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है, कोई संसार को ही सर्वस्व मान कर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मान कर घर-बार तृण-सा छोड़ देता है। अपने-अपने रंग में सब रंगे हैं। जिसने जो सिद्धान्त कर लिया है वही उसके जी में गड़ रहा है और उसके खंडन-मंडन में जन्म बिताता है। पर वह जो परम प्रेम अमृतमय एकान्त भक्ति है, जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह-स्वरूप ज्ञान-विज्ञानादिक अंधकार नाश हो जाते हैं और जिसके चित में आते ही संसार का निगड़ आप से आप खुल जाता है—वह किसी को नहीं मिली, मिले कहाँ से ? सब उसी के अधिकारी भी तो नहीं हैं। और भी, जो लोग धार्मिक कहाते हैं, उनका चित्त, स्वगत-स्थापन और परमत-निराकरण-रूप वाद-विवाद से, और जो विचारे विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छा रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नहीं कि इधर झुके। (सोच कर) अहा ! इस मदिरा को शिव जी ने पान किया है और कोई क्या पियेगा ? जिसके प्रभाव से अर्द्धाङ्ग में बैठी पार्वती भी उनको विकार नहीं कर सकतीं, धन्य हैं, धन्य हैं और दूसरा ऐसा कौन है। (विचार कर) नहीं नहीं, ब्रज की गोपियों ने उन्हें भी जीत लिया है। अहा ! इनका कैसा

अर्थ—यहाँ श्री शुकदेव के वेश-विन्यास और सौन्दर्य का वर्णन है। शुकदेव जी का लावण्यमय कोमल श्याम-शरीर का अंग-प्रत्यंग शोभा दे रहा है। उनके घुँघराले बालों पर जादू-टोना भी न्यौछावर हैं। उनकी विशाल भुजाएँ हैं, मुख-चन्द देदीप्यमान है, नेत्र लजौहैं और कमान के समान खिचीं हुई उनकी दोनों भौंहैं हृदय में गड़ जाती हैं। उनके इस सौन्दर्य को देखते हुए नेत्र एक क्षण को नहीं हटते। उनका यह अनुपम सौन्दर्य वर्णन से परे है। ऐसा लगता है, मानों उसके रूप में प्रेम-पुंज ही साक्षात् शरीर धारण करके आ रहा हो।

अलंकार—अनुप्रास, 'मुख-चन्द' में रूपक। 'जुग कमान सी खिची···· भौंहैं' में उपमा। 'मनु प्रेम-पुंज··········लखात है' में उत्प्रेक्षा।

[पृष्ठ २०]

अथ विष्कम्भक

विष्कम्भक—पहले के दृश्य अथवा आगे के दृश्य की घटनाओं की सूचना जिस संक्षिप्त रीति से दी जाती है, उसे विष्कम्भक कहते हैं। इसमें केवल दो पात्रों का कथोपकथन होता है। 'चन्द्रावली' में पहले अंक से पूर्व विष्कम्भक का प्रयोग नाट्यकला की दृष्टि से दोष है, परन्तु इसमें शुकदेव और नारद के संवाद के द्वारा कथावस्तु के सम्बन्ध में संकेत मिलता है।

शुकदेव—शुकदेव महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के पुत्र थे। उन्होंने राजा परीक्षित को भागवत सुनाया था। वे प्रसिद्ध ब्रह्म ज्ञानी थे। **नेम**=नियम, विधिविहित मर्यादा मार्ग। **मतमतान्तर**=विभिन्न धर्म। **परमार्थ**=मोक्ष। **"परम प्रेम अमृतमय एकांत भक्ति"**=यहाँ रागानुराग अथवा प्रेम-लक्षणा भक्ति से तात्पर्य है। इसमें भक्त प्रेममय कृष्ण के गुणों पर आसक्त होता है। वह अन्य प्रपंचों को छोड़कर कृष्ण की प्रेम-भक्ति के अमृत-पान की अभिलाषा करता है। **"आग्रह स्वरूप ज्ञान-विज्ञानादिक अंधकार"**=वेदशास्त्र और अन्य पुराणादि का ज्ञान-भक्ति में अंधकार स्वरूप है। पुष्टमार्गीय भक्ति में ज्ञान को आवश्यक नहीं माना गया है। कृष्ण प्रेम के वशीभूत होकर ही भक्त पर कृपा करते हैं। 'निगड़'=बन्धन, बेड़ी, लोक और वेद के बन्धन। **अधिकारी**=पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण की सेवा का अधिकार ही परम पुरुषार्थ है,

विलक्षण प्रेम है कि अकथनीय और अकरणीय, क्योंकि जहाँ महात्म्य-ज्ञान होता है; वहाँ प्रेम नहीं होता और जहाँ पूर्ण प्रीति होती है वहाँ महात्म्य-ज्ञान नहीं होता। ये धन्य हैं कि इनमें दोनों बातें एक संग मिलती हैं, नहीं तो मेरा-सा निवृत्त मनुष्य भी रात-दिन इन्हीं लोगों का यश क्यों गाता ?

[नेपथ्य में वीणा बजती है]

[आकाश की ओर देख कर और वीणा का शब्द सुनकर]

अहा ! यह आकाश कैसा प्रकाशित हो रहा है और वीणा के कैसे मधुर स्वर कान में पड़ते हैं। ऐसा संभव होता है कि देवर्षि भगवान् नारद यहाँ आते हैं। अहा ! वीणा कैसे मीठे सुर से बोलती है। (नेपथ्य-पथ की **ओर देख** कर) अहा ! वही तो हैं, धन्य है, कैसी सुन्दर शोभा है।

पिंग जटा को भार सीस पै सुन्दर सोहत।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम, चरन मैं घुँघरू धारत।
नारायण गोविन्द कृष्ण यह नाम उचारत॥
लै वीना कर वादन करत तान सात सुर सों भरत।
जग अघ छिन मैं हरि कहि हरत जेहि सुन नर भव-जल तरत॥

जुग तूंबन की बीन परम सोभित मनभाई।
लय अरु सुर की मनहुँ जुगल गठरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग मन मोहैं॥
कै श्रीराधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रकट।
यह अगम खजानें द्वै भरे नित खरचत तो हूँ अघट॥

मनु तीरथ-मय कृष्ण-चरित की काँवरि लीने
कै भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने॥
जग बुद्धि तौलन हेतु मनहुँ यह तुला बनाई।
भक्ति मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई॥

परन्तु यह अधिकार कृष्ण की कृपा से ही मिलता है। **"स्वमतस्थापन और पर-मत निराकरण"**=अपने मत और सिद्धान्त की स्थापना करना तथा दूसरे के मत और सिद्धान्त के खण्डन के लिये विवाद करना। **विषयी**=विषयों में लिप्त।

"इस मदिरा को शिवजी ने पान किया"=शिवजी को विष्णु-भक्त कहा गया है। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के अनुसार शिवजी परब्रह्म कृष्ण के ही अंश हैं। वे कृष्ण की प्रेमरूपी मदिरा में डूबे रहते हैं। **"ब्रज की गोपियों"**= गोपियाँ वेद की ऋचायें हैं। भगवान के अनुग्रह से गोपियों द्वारा ही पुष्टि-मार्ग प्रवर्तित माना गया है। **"अकथनीय और अकरणीय"**=वर्णनातीत और जिसका अनुकरण न किया जा सके। **माहात्म्य-ज्ञान**=कृष्ण के परम महत्व का ज्ञान। **"जहाँ माहात्म्य...... ....होता"**=जो लोग भगवान के महत्व का ज्ञान रखते हैं, वे उसी में डूबे रहते हैं और उनके हृदय में भगवान के प्रति प्रीत नहीं होती, परन्तु जिनमें पूर्ण प्रीति होती है, वे महात्म्य ज्ञान को नहीं जानते। परन्तु गोपियों मे दोनों का समन्वय है। **'पूर्ण प्रीति'**=एकान्त अनुरक्ति, श्री कृष्ण के प्रति पूर्ण प्रेम-समर्पण। **निवृत्त**=मुक्त, विरक्त।

व्याख्या

"अहा ! संसार........खुल जाता है।"

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश 'विष्कम्भक' में शुकदेव का स्वगत-कथन है। शुकदेव कृष्ण की लीलाओं को स्मरण करके स्नेह-मुग्ध हो रहे हैं। वे सोचते हैं कि संसार विभिन्न मत-मतान्तरों और सिद्धान्तों के खंडन-मंडन में लगा हुआ है' किन्तु सरस-प्रेममय एकान्त भक्ति किसी को नहीं मिलतीं हैं।

व्याख्या—शुकदेव कृष्ण-प्रेम के आनन्द में निमग्न हैं। वे सोचते हैं कि इस संसार के प्राणियों की कितनी विलक्षण रुचि है। कोई किसी में आशक्त है तो कोई किसी रुचि से डूबा हुआ है। कोई धर्म को सर्वोपरि बतलाकर अपने को गौरवान्वित समझता है, तो कोई ज्ञान और ध्यान में खोया हुआ है। कोई विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के झगड़े में पकड़कर मतवाला हो गया है। वह हठ पूर्वक अपने ही धर्म और सम्प्रदाय की श्रेष्ठता का निरूपण करता है। मनुष्य अपनी ही रुचि को प्रमुखता देकर दूसरों में दोष निकालता है और अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझ लेता है।

मनु गावत सौं श्रीराग के बीना हू फलती भई।
कै राग सिन्धु के तरन हित, यह दोऊ तूंबी लई ॥
ब्रह्म जीव, निरगुन सगुन, द्वैताद्वैत विचार।
नित्य अनित्य विवाद कै, द्वै तूंबा निरधार ॥
जो एक तूंबा लै कढ़ै, सो वैरागी होय।
क्यों नहिं ये सब सों बढ़ै, लै तूंबा कर दोय ॥

तो अब इनसे मिल के आज मैं परमानन्द लाभ करूंगा।

[नारद जी आते हैं]

शुकदेवजी : (आगे बढ़कर और गले से मिल कर) आइए आइए, कहिए कुशल तो है ? किस देश को पवित्र करते हुए आते हैं ?

नारद : आपसे महापुरुष के दर्शन हों और फिर भी कुशल न हो, यह बात तो सर्वथा असम्भव है, और आपसे तो कुशल पूछना ही व्यर्थ है।

शुकदेवजी : यह तो हुआ, अब कहिए आप आते कहाँ से हैं ?

नारद : इस समय तो मैं श्री वृन्दावन से आता हूँ।

शुकदेवजी : अहा ! आप धन्य हैं उस पवित्र भूमि से आते हैं (पैर छूकर) धन्य है, उस भूमि की रज, कहिए वहाँ क्या-क्या देखा ?

नारद : वहाँ परम प्रेमानन्दमयी श्रीब्रज वल्लभी लोगों का दर्शन करके अपने को पवित्र किया और उनकी विरहावस्था देखता बरसों वहीं भूला पड़ा रहा। अहा, ये श्रीगोपीजन धन्य हैं इनके गुणगण कौन कह सकता है—

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
जिन तृन सम कुल लाज निगड़ सब तोरयो हरि-रस माहीं ॥
जिन निज बस कीने नँदनंदन बिहरी दैं गलबाँहीं।
सब सन्तन के सीस रहौ इन चरन-छत्र की छाँहीं ॥
ब्रज की लता पता मोहिं कीजै।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै।

इस संसार में कोई मनुष्य भौतिक सुख और समृद्धि को ही सर्वस्व मान लेता है और ईश्वर विषयक चर्चा से चिढ़कर उस ओर से अपना मुख फेर लेता है, तो कोई परमार्थ को ही परम पुरुषार्थ मान लेता है और परमार्थ चिन्तन में लगकर अपने घर बार तथा भौतिक सुख को तिल के समान ही समझकर छोड़ देता है। इस प्रकार सभी मनुष्य अपनी ही रुचि में निमग्न हैं। जिसने जिस सिद्धान्त को पकड़ लिया वह उसी को सत्य और श्रेष्ठ मान बैठा, तथा उसी के खडन-मंडन में जीवन भर लगा रहा। किन्तु वह पावन और निश्चल भक्ति जिसके हृदय में आते ही भक्त का हृदय परम प्रेममय भगवान के अमृत रूपी प्रेम से परिष्कृत रहता है और जिसके उदय से मनुष्य के हृदय में ज्ञान-विज्ञान का आग्रहमय छाया हुआ अंधकार दूर हो जाता है तथा संसार के बन्धन को तोड़ देती है, किसी को नहीं मिली।

"वह किसी..................जीत लिया है।"

संदर्भ—विष्कम्भक के प्रस्तुत गद्यांश में शुकदेव जी कहते हैं कि विभिन्न मतवाद और नये-नये धर्म में निमग्न मनुष्य भगवान की अमृतमय भक्ति को नहीं पा सकते। इस अमृतमय भक्ति को शिव जी ने पाया, किन्तु गोपियों की प्रेम-भक्ति ने उन्हें भी जीत लिया—

व्याख्या—भगवान की अनुग्रहमय अमृत-भक्ति को कोई भी नहीं पा सकता। सबका पाना सम्भव भी तो नहीं है, क्योंकि सभी उसके अधिकारी भी नहीं हो सकते। सर्वथा अधिकारी वही होता है, जिस पर भगवान की कृपा हो जाती है। वह उनके अमृतमय प्रेम में अनुरक्त रहता है। जो लोग अपने को धार्मिक कहते हैं, वे भी तो इसके अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि उनका सारा समय अपने सिद्धान्त की स्थापना करने तथा दूसरे के मत को खंडन करने में ही व्यतीत होता है। इनके अतिरिक्त जो संसार के सुख-भोगों में लिप्त रहने वाले हैं, उनको अनेक प्रकार की तृष्णाओं और इच्छाओं से अवसर ही नहीं मिलता कि वे भगवान की प्रेममय भक्ति की ओर जा सकें। इस प्रेमामृत को शिव जी ने पान किया था, जिसके प्रभाव से वामांग में बैठी हुई पार्वती भी उनके हृदय में वासना जनित विकार नहीं उत्पन्न कर पाती। वे सदैव भगवान के प्रेम-सागर

आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै।
श्रीराधे राधे मुख, यह बर मुँह माँग्यो हरि दीजै ।।
(प्रेम अवस्था में आते हैं और नेत्रों से आँसू बहाते हैं)

शुकदेवजी : (अपने आँसू पोंछ कर) अहा ! धन्य हैं आप धन्य हैं, अभी जो मैं न सम्हालता तो वीणा आपके हाथ से छूट के गिर पड़ती, क्यों न हो, श्रीमहादेव जी की प्रीति के पात्र होकर आप ऐसे प्रेमी हों इसमें आश्चर्य नहीं।

नारद : (अपने को सम्हाल कर) अहा ! ये क्षण कैसे आनन्द से बीते हैं, यह आपसे महात्मा की संगत का फल है।

शुकदेवजी : कहिए, उन सब गोपियों में प्रेम विशेष किसका है ?

नारद : विशेष किसका कहूँ, न्यून किसका कहूँ, एक से एक बढ़कर हैं। श्रीमती की कोई बात ही नहीं, वे तो श्रीकृष्ण ही हैं, लीलार्थ दो हो रहीं तथापि सब गोपियों में श्रीचन्द्रावली जी के प्रेम की चर्चा आजकल व्रज के डगर-डगर में फैली हुई है। अहा ! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता-पिता, भाई-बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भी भय है, तथापि श्रीकृष्ण से जल में दूध की भाँति मिल रही हैं। लोक-लाज, गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते। किसी न किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिल ही रहती हैं।

शुकदेवजी : धन्य हैं, धन्य हैं ! कुल को, वरन् जगत् को अपने निर्मल प्रेम से पवित्र करने वाली हैं।

(नेपथ्य में वेणु का शब्द होता है)

अहा ! यह वंशी का शब्द तो और भी व्रजलीला की सुधि दिलाता है। चलिए, चलिए अब तो व्रज का वियोग सहा नहीं जाता, शीघ्र ही चलके उनका प्रेम देखें, उस लीला के बिना देखे आँखें व्याकुल हो रही हैं।

[दोनों जाते हैं]

।। इति प्रेमसुख नामक विष्कम्भक ।।

में मग्न रहते हैं। इस प्रेमामृत का पान करने में ब्रज की गोपियाँ शिवजी से भी आगे हैं। उनका विलक्षण प्रेम अकथनीय है।

"अहा ! इनका..........गाता ॥"

सन्दर्भ और व्याख्या—कृष्ण के प्रेमानन्द में निमग्न शुकदेव चिंतन करते हैं कि इस संसार में विलक्षण रुचि के मनुष्य विभिन्न रुचि और मत-मतान्तरों के खंडन-मंडन तथा संसार में आसक्त और विरक्त दिखाई पड़ते हैं, किन्तु वे अमृतमय कृष्ण की रागानुगा-भक्ति से वंचित रहते हैं। कृष्ण की प्रेममयी भक्ति ही अज्ञान का अन्धकार हटाकर वास्तविक आनन्द दे सकती है, परन्तु यह मिलती ही कब है ? क्योंकि इनके सभी अधिकारी भी तो नहीं होते। इसकी प्राप्ति कृष्ण के अनुग्रह से ही हो सकती है। इस प्रेम-मदिरा को शिव-जी ने पान किया, इसके प्रभाव से समीप में बैठी हुई पार्वती भी उनमें विकार नहीं उत्पन्न कर पातीं, परन्तु गोपियों का प्रेम शिवजी से बढ़कर है। ब्रज की गोपियों का ऐसा विलक्षण प्रेम है, जिसे दूसरा नहीं पा सकता। उनकी सी प्रेम-अनन्यता अन्यत्र नहीं मिलती। गोपियों का विलक्षण-प्रेम वर्णन से परे है। कृष्ण परमब्रह्म परमात्मा हैं और वे ही सच्चे प्रेम के आलम्बन हैं। गोपियों के हृदय में कृष्ण के पूर्ण ब्रह्मत्व के माहात्म्य का ज्ञान है, किन्तु वे लोक-लाज छोड़कर कृष्ण के प्रेम में भी निमग्न हैं। जिसके हृदय में भगवान या किसी के माहात्म्य का ज्ञान होता है, उसके प्रति उसके हृदय में प्रेम नहीं होता और जिसके हृदय में प्रेम होता है वह उसका माहात्म्य जानने की इच्छा नहीं करता। प्रेम में मनुष्य प्रेम-पात्र से समस्त अलगावों को समाप्त कर दूध में पानी की तरह उसमें मिल जाता है, किन्तु माहात्म्य-ज्ञान की स्थिति में मनुष्य उससे माहात्म्य की गरिमा के कारण एकात्मकता नहीं स्थापित कर पाता, किन्तु गोपियों में जहाँ माहात्म्य ज्ञान है वहाँ प्रेम भी है। वे कृष्ण के प्रेम-विरह में निमग्न होकर उनमें एकाकार हो रही हैं, किन्तु वे यह भी जानतीं हैं कि कृष्ण परमब्रह्म हैं। यदि गोपियों के प्रेम में वह विलक्षणता न होती, तो मुझ जैसा विरक्त पुरुष क्यों इन गोपियों के प्रेम का गुणगान करता ?

प्रथम अंक

[जवनिका उठी]

स्थान—श्रीवृन्दावन, गिरिराज दूर से दिखता है।

[चन्द्रावली और ललिता आती हैं]

ललिता : प्यारी, व्यर्थ इतना सोच क्यों करती है ?

चन्द्रावली : नहीं सखी ! मुझे सोच किस बात का।

ललिता : ठीक है, ऐसी ही तो हम मूर्ख हैं कि इतना भी नहीं समझतीं।

चन्द्रावली : नहीं सखी ! मैं सच कहती हूँ, मुझे कोई सोच नहीं।

ललिता : बलिहारी सखी ! एक तू ही तो चतुर है, हम सब तो निरी मूर्ख हैं।

चन्द्रावली : नहीं सखी ! जो कुछ सोच होता तो मैं तुझसे कहती न। तुझसे ऐसी कौन बात है जो छिपाती ?

ललिता : इतनी ही तो कसर है, जो तू मुझे अपनी प्यारी सखी समझती तो क्यों छिपाती ?

चन्द्रावली : चल, मुझे दुख न दे, भला मेरी प्यारी सखी तू न होगी तो और कौन होगी ?

ललिता : पर यह बात मुख से कहती है, चित्त से नहीं।

चन्द्रावली : क्यों ?

ललिता : जो चित्त से कहती तो फिर मुझसे क्यों छिपाती ?

चन्द्रावली : नहीं, सखी ! यह केवल तेरा झूठा सन्देह है।

ललिता : सखी ! मैं भी इसी ब्रज में रहती हूँ और सब के रंग-ढंग देखती ही हूँ ! तू मुझ से इतना क्यों उड़ती है ? क्या तू यह समझती है कि मैं यह भेद किसी से कह दूँगी ? ऐसा कभी न समझना सखी ! तू तो मेरी प्राण है, मैं तेरा भेद किससे कहने जाऊँगी ?

विशेष—

यहाँ वल्लभाचार्य की रागानुगा प्रेम-लक्षणा-भक्ति का निरूपण है। कृष्ण पूर्ण परब्रह्म हैं। उनकी भक्ति केवल माहात्म्य ज्ञान से नहीं मिलती। जब भक्त उनके माहात्म्य ज्ञान को स्वीकार करते हुए अपने प्रेमातिरेक से उनका अनुग्रह प्राप्त कर लेता है, तभी वह उनके वास्तविक प्रेम का अधिकारी हो सकता है।

[पृष्ठ २२]

नारद=नारद ब्रह्मा के मानस-पुत्र हैं। वे प्रसिद्ध हरि-भक्त तथा नारद-सूत्र (नारद पांचरात्र) की रचना करने वाले हैं। सदा तर्पण करते रहने के कारण वे नारद कहे जाते हैं।

पिंग=पीला। मृगपति=सिंह। सात स्वर=संगीत के सात स्वर (१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गंधार, ४. पंचम, ५. धैवत, ६. मध्यम और ७. निषाद (सा, रे, ग, म, प, ध, नि)। अघ=पाप। जुग=दो। लय अरु सुर=गाने, बजाने और पैर एक साथ उठाने आदि में 'द्रुत', 'मध्य' और 'विलंबित' लय तथा स्वर। आरोहन-अवरोहन=संगीत में स्वरों का चढ़ाव-उतार। अगम=अथाह, बहुत गहरे। खरचत=खर्च करने पर भी। अघट=जो घटे नहीं। 'तीर्थमय-कृष्ण चरित'=समस्त तीर्थों के समान कृष्ण-चरित्र। काँवरि=बँहगो। भूगोल-खगोल=पृथ्वी और आकाश। कर आमलक=हाथ का आमला, अर्थात् वह वस्तु जिसको आसानी से प्राप्त किया जा सके। तुला=तराजू। श्रीराग=संगीताचार्यों ने १. भैरव, २. कौशिक, ३. हिन्दोल, ४. दीपक ५. श्री और ६. 'मेघ' राग माने हैं। इनमें 'श्रीराग' मधुर राग होता है। राग-सिन्धु=अनुराग का समुद्र। तूँबी=कद्दू को खोखला करके बनाया गया पात्र, जो वीणा में लगा रहता है। ब्रह्म जीव=ब्रह्म और जीव के पारस्परिक सम्बन्ध में विवाद। निरगुण-सगुण=निर्गुण ब्रह्म सत्व, रज और तम तीनों गुणों से परे है, सगुण ब्रह्म सत्व, रज और तम से युक्त हैं, इन दोनों के सम्बन्ध में विवाद। द्वैताद्वैत=द्वैत और अद्वैत का दार्शनिक सिद्धान्त। द्वैतावाद में जीव और ब्रह्म की सत्ता पृथक-पृथक स्वीकार की गई हैं। मध्वाचार्य द्वैतावाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनका विचार है कि कारण से

चन्द्रावली : सखी ! भगवान न करे कि किसी को किसी बात का सन्देह पड़ जाय, जिसको जो सन्देह पड़ जाता है वह फिर कठिनता से मिटता है।

ललिता : अच्छा, तू सौगंध खा।

चन्द्रावली : हाँ सखी ! तेरी सौगंध।

ललिता : क्या मेरी सौगंध ?

चन्द्रावली : तेरी सौगंध कुछ नहीं है।

ललिता : क्या कुछ नहीं है, फिर तू चली न अपनी चाल से ? तेरी छल-विद्या कहीं नहीं जाती, तू व्यर्थ इतना क्यों छिपाती है। सखी ! तेरा मुखड़ा कहे देता है कि कुछ न कुछ सोचा करती है।

चन्द्रावली : क्यों सखी ! मेरा मुखड़ा क्या कहे देता है ?

ललिता : यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फँसी है।

चन्द्रावली : बलिहारी सखी ! मुझे अच्छा कलंक दिया !

ललिता : यह बलिहारी कुछ काम न आवेगी, अन्त में फिर मैं ही काम आऊँगी और मुझी से सब कुछ कहना पड़ेगा, क्योंकि इस रोग का वैद्य मेरे सिवा दूसरा कोई न मिलेगा।

चन्द्रावली : पर सखी ! जब कोई रोग हो तब न ?

ललिता : फिर वही बात कहे जाती है, अब क्या मैं इतना भी नहीं समझती ! सखी ! भगवान ने मुझे भी आँखें दी हैं और मेरे भी मन है और मैं कुछ ईंट-पत्थर की नहीं हूँ।

चन्द्रावली : यह कौन कहता है कि तू ईंट-पत्थर की बनी है, इससे क्या ?

ललिता : इससे यह कि इस ब्रज में रह कर उससे वही बची होगी जो ईंट-पत्थर की होगी।

चन्द्रावली : किस से ?

ललिता : जिसके पीछे तेरी यह दशा है।

चन्द्रावली : किसके पीछे मेरी यह दशा है ?

कार्य की उत्पत्ति होती है, परन्तु दोनों अलग-अलग हैं। इसी प्रकार जीव की उत्पत्ति ईश्वर से होती है, परन्तु दोनों पृथक-पृथक हैं। **अद्वैतवाद** में ईश्वर के अतिरिक्त और कोई सत्ता स्वीकार की नहीं गई हैं। अद्वैतवाद आत्मा और परमात्मा में कोई भेद स्वीकार नहीं करता। शंकराचार्य **अद्वैतवाद** के प्रवर्तक थे।

नित्य अनित्य = अविनाशी और त्रिकालव्यापी ब्रह्म नित्य है, जबकि जीव क्षण-भंगुर और नाशवान है। प्रेमानन्दमयी श्री व्रजवल्लभी **लोग** = प्रेमानन्द से पूर्ण श्री कृष्ण के भक्त। हरि रस = कृष्ण की भक्ति का रस। **विरहावस्था** = पुष्टिमार्गीय भक्ति में श्री कृष्ण के प्रेम विरह को विशेष महत्व दिया गया है। सरि = समान।

"जग तृन सम..........माहीं" = श्री कृष्ण के प्रेम में लोक-लाज, कुल-मर्यादा का ध्यान नहीं रहता। **श्रीमती** = श्रीमती राधा। **लीलार्थ दो हो रहे हैं** = कृष्ण ब्रह्म हैं और उनकी शक्ति है। शक्ति रूपा राधा की उत्पत्ति कृष्ण से ही हुई है। एक होते हुए भी लीलार्थ उन्होंने दो रूप धारण किये हैं। डगर-डगर = मार्ग-मार्ग। निषेध = रोकना। जल में दूध की भाँति मिलना = अभिन्नता। वेणु = वंशी — वंशी-रव का आध्यात्मिक महत्व है। पुष्टिमार्ग से वंशी का बहुत माहात्म्य है

"पिंग जटा को भार................दोय ॥"

अर्थ—रंगमंच पर नारद जी प्रवेश करते हैं। यहाँ उनकी वेश-भूषा और माहात्म्य का वर्णन है। नारद जी के शीश पर स्वर्णिम जटाओं का भार शोभा दे रहा है। उनके गले में सुशोभित तुलसी की माला मन को मोहित करती है। वे कटि में सिंह-चर्म धारण किये हैं और उनके चरणों में घुँघरू शोभा दे रहे हैं। वे निरन्तर नारायण; गोविन्द और कृष्ण नाम का उच्चारण कर रहे हैं। उनके हाथ में वीणा है जिससे सात स्वर निकल रहे हैं। वे हरि-नाम कहकर क्षण मात्र में संसार के पापों को दूर कर देते हैं। उनके द्वारा उच्चारित हरिनाम को सुनकर मनुष्य भव-सागर से तर जाते हैं।

ललिता : सखी ! तू फिर वही बात कहे जाती है। मेरी रानी; ये आखें ऐसी बुरी हैं कि जब किसी से लगती हैं तब कितना भी छिपाओ; नहीं छिपती।

छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत, सब जानि जात हैं घूँघट में न खगे ।।
कितनौ करौ दुराव, दुरत नहीं जब ये प्रेम पगे।
निडर भए उघरे से डोलत मोहन रंग रँगे ।।

चन्द्रावली : वाह सखी ! क्यों न हो, तेरी क्या बात है, अब तू ही तो एक पहेली बूझने वालों में बची है, चल बहुत न बोल, कुछ भगवान से भी डर।

ललिता : जो तू भगवान से डरती तो झूठ क्यों बोलती ? वाह सखी ! अब तो तू बड़ी बहादुर हो गई है। कैसा अपना दोष छिपाने को मुझे पहिले ही झूठी बना दिया। (हाथ जोड़ कर) धन्य है। तू दंडवत करने के योग्य है, कृपा करके अपना बायाँ चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूं, चल मैं आज से तुझसे कुछ न पूछूंगी।

चन्द्रावली : (कुछ सकपकानी सी होकर) नहीं सखी, तू क्यों झूठी है, झूठी तो मैं हूँ, और जो तू ही बात न पूछेगी तो कौन बात पूछेगा। सखी ! तेरे ही भरोसे तो मैं ऐसी निडर रहती हूँ और तू ऐसी रूसी हो जाती है !

ललिता : नहीं, बस अब मैं कुछ नहीं पूछने की, एक बेर पूछकर फल पा चुकी।

चन्द्रावली : (हाथ जोड़ कर) नहीं सखी ! ऐसी बात मुँह से मत निकाल, एक तो मैं आप ही मर रही हूँ, तेरी बात सुनने से और भी अधमरी हो जाऊँगी (आँखों में आँसू भर लेती है)।

ललिता : प्यारी ! तुझे मेरी सौगन्ध। उदास न हो, मैं तो सब भाँति तेरी हूँ और तेरे भले हेतु प्राण देने को तैयार हूँ। यह तो मैंने हँसी की थी, क्या मैं नहीं जानती कि मुझ से कोई बात न

नारद जी के कंधों पर दो तूंबों की मन को भाने वाली वीणा शोभा दे रही है। ऐसा लगता है मानों लय और स्वर की दो गठरी लटकाई गई हों, या दोनों तूंबों के रूप में संगीत में स्वरों के चढ़ाव उतार के दो फल शोभा दे रहे हों, या वे कोमल और तीव्र स्वर को भरे हुए संसार के मन को मोहित कर रहे हों, या ये दोनों राधा और कृष्ण के अमित गुण समूहों के प्रत्यक्ष रूप में भरे खजाने हैं, जो खर्च होने पर भी कम नहीं होवे।

नारद जी वीणा के इन दो तूंबों के रूप में मानों समस्त तीर्थों के समान कृष्ण चरित्र की कांवरि लिए हुए हों, या पृथ्वी और आकाश को सहज ही धारण किये हुए हों। इन तूंबों के रूप में मानो संसार की बुद्धि तौलने के लिए तुला बनाई गई हो, या भक्ति और मुक्ति के रूप में दो पिटारियाँ लटकाई गई हों, या श्रीराग गाने के लिये वीणा फलवती हो रही हो या राग रूपी समुद्र को तारने के लिए नारद जी ने इन दो तूंबियों को धारण किया हो।

नारद जी की वीणा के दोनों तूंबे ब्रह्म जीव, निर्गुण-सगुण और द्वैता-द्वैत के भेद का विचार करने वाले हैं और नित्यता एवं अनित्यता के विवाद का निर्णय करने वाले हैं। जो व्यक्ति एक तूंबा लेकर चलता है, वह वैरागी हो जाता है, परन्तु नारद जी तो दो तूंबा धारण करके चलते हैं। अतः ये सबसे बड़े वैरागी हैं।

"गोपिन की सरि कोऊ नाहीं ॥"

अर्थ—नारद जी गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उनके समान संसार में कोई नहीं है। इन्होंने श्री कृष्ण के प्रेम में लोक-लाज, कुल मर्यादा के बन्धन तोड़ दिए हैं। इन्होंने अपने प्रेम एवं भक्ति के वश में श्री कृष्ण को कर लिया और उनके गले में बाँहें डालकर विहार किया। इन प्रेमी जन गोपियों के चरणों की छाया समस्त संतों के शीस का छत्र बनकर रहे।

"ब्रज की लता पता मोहिं कीजै ॥"

अर्थ—गोपियों के प्रेम में निमग्न होकर नारद जी ब्रज की लता-पता होने

छिपावेगी और छिपावेगी तो काम कैसे चलेगा, देखा !

हम भेद न जानिहैं जो पै कछू,
औ दुराव सखी हम मैं परिहै।
कहि कौन मिलैहै पियारे पियै,
पुनि कारज कासों सबै सरिहै॥
बिन मोसों कहै न उपाय कछू,
यह वेदन दूसरी को हरिहै।
नहिं रोगी बताइहै रोगहि जो,
सखी बापुरो वैद कहा करिहै॥

चन्द्रावली : तो सखी, ऐसी कौन बात है जो तुझसे छिपी है ? तू जान-बूझ के बार-बार क्यों पूछती है। ऐसे पूछने को तो मुँह चिढ़ाना कहते हैं और इसके सिवा मुझे व्यर्थ याद दिला कर क्यों दुःख देती है। हा !

ललिता : सखी ! मैं तो पहिले ही समझी थी, वह तो केवल तेरे हठ करने से मैंने इतना पूछा, नहीं तो मैं क्या नहीं जानती।

चन्द्रावली : सखी, मैं क्या करूँ, मैं कितना चाहती हूँ कि यह ध्यान भुला दूँ, पर उस निठुर की छवि भूलती नहीं, इसी से सब जान जाते हैं।

ललिता : सखी, ठीक है।

लगौंही चितवनि औरहि होति।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति॥
घूँघट में नहिं थिरत तनिक हू अति ललचौंही बानि।
छिपत न कैसहूँ प्रीति निगोड़ी अन्त जात सब जानि।

चन्द्रावली : सखी, ठीक है, जो दोष है वह इन्हीं नेत्रों का है, यही रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते और यही दुष्ट अन्त में अपने किये पर रोते हैं।

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भये पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरे॥

की अभिलाषा करते हुए कहते हैं कि गोपियों के चरणों की पावन रज उनके शीश पर बनी रहे, और कुञ्ज-गलियों में आते-जाते वे कृष्ण की रूप-माधुरी का पान करते रहें। वे कृष्ण से यही वरदान चाहते हैं कि उनके मुख से निरन्तर राधा नाम का उच्चारण होता रहे।

"विशेष किसका कहूँ............रहती हैं ।।"

सन्दर्भ—यहाँ प्रथम अंक से पहले के विष्कम्भक में ब्रज-गोपियों के प्रेम के सम्बन्ध में श्री शुकदेव और नारद जी का संवाद चल रहा है। नारद जी चन्द्रावली के विलक्षण एवं अनन्य प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

व्याख्या—ब्रज-बल्लभियों में से कृष्ण के प्रति प्रत्येक का प्रेम एक दूसरे से बढ़कर है। इनमें से किसी के भी प्रेम को विशेष और किसी के प्रेम को न्यून नहीं कहा जा सकता। सभी का प्रेम एक दूसरे से बढ़कर है। श्रीमती राधा का प्रेम तो वर्णन से परे ही है। वे तो कृष्ण ही हैं, केवल लौकिक लीला के लिए ही कृष्ण से पृथक उनकी सत्ता है। अन्य समस्त गोपियों में श्री चन्द्रावली का प्रेम सर्वोपरि है। आजकल ब्रज की डगर-डगर में उसके प्रेम की चर्चा हो रही है। उनका विलक्षण प्रेम कथन से परे है। माता-पिता भाई-बन्धु आदि सभी उनको प्रेम करने से रोकते हैं। कृष्ण की ज्येष्ठ प्रेयसी श्रीमती राधिका जी का भी भय है, परन्तु चंद्रावली को इन व्यवधानों की किंचित भी चिन्ता नहीं है। वह कृष्ण के प्रेम में डूबकर इस प्रकार उनमें मिल गई हैं, जिस प्रकार दूध में पानी मिलकर एक हो जाता है, लोक-लज्जा और गुरुजनों का वर्जन उसे रोक नहीं पाता। वह किसी उपाय से कृष्ण से मिल ही लेती हैं।

पहला अंक

[पृष्ठ २८]

अङ्क—नाटकीय कथावस्तु के विभाजन को अंक कहते हैं। **जवनिका** = रंगमंच के आगे के पर्दे को जवनिका कहा जाता है। यह दृश्य के प्रारम्भ में उठाया और अन्त में गिराया जाता है।

प्रथम अङ्क की कथावस्तु

इस अंक में ललिता और चंद्रावली का स्नेहालाप है। चंद्रावली कृष्ण

मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दूरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं हठ सी तनिक मुरे।
अमृत मरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे॥

ललिता : इसमें क्या सन्देह है, मुझ पर तो सब कुछ बीत चुकी है, मैं इनके व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूँ, ये निगोड़े नैन ऐसे ही होते हैं।

होत सखि ये उलझौंहें नैन :
उरझि परत, सुरझ्यौ नहिं जानत, सोचत समुझत हैं न॥
कोऊ नहिं बरजै जो इनकी बनत मत्त जिमि गैन।
कहा कहौं इन बैरिन पाछे होत लैन के दैन॥

चन्द्रावली : और फिर इनका हठ ऐसा है कि जिसकी छवि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूले, क्या वह भूलने के योग्य है, हा!

नैना वह छवि नाहिन भूले।
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि, वह हंसनि छबीली, वह मुसकनि चित चारैं।
वह बतरानि, मुरनि हरि की वह, वह देखन चहुँ कोरैं॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परबस भये फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि-ससि-मुख ऐसी छवि निरखत तन-मन-धन सब हारे॥

ललिता : सखी! मेरी तो यह बिपत्ति भोगी हुई है। इससे मैं तुझे कुछ नहीं कहती, दूसरी होती तो तेरी निन्दा करती और तुझे इससे रोकती।

चन्द्रावली : सखी! दूसरी होती तो मैं भी उससे यों एक संग न कह देती। तू तो मेरी आत्मा है। तू मेरा दुःख मिटावेगी कि उलटा समझावेगी?

के प्रेम में डूबकर तन-मन की सुध भूल चुकी हैं। वह अपने प्रेम को ललिता से छिपाना चाहती है। परन्तु उसका प्रेम छिप नहीं पाता। वह ललिता पर प्रकट हो जाता है। इस प्रकार प्रेम का प्रकाशन हो जाता है।

गिरिराज=गोवर्धन पर्वत। **बलिहारी सखी**=यह एक नाटकीय सम्बोधन है, जिससे आश्चर्य सूचक व्यंजना होती है। **निरी**=बिलकुल। **कसर**=कमी। **"मुख से कहती है चित्त से नहीं"**=हृदय के भाव छिपाकर प्रकट रूप में कुछ और ही भाव व्यक्त करती हैं। **उड़ती है**=बातें बनाती हैं, बात छिपाती है।

[पृष्ठ ३०]

चली न अपनी चाल से=अपने आचरण के अनुसार व्यवहार करना, कपटपूर्ण व्यवहार। **छल-विद्या**=धूर्तता, कपटाचरण। **मुखड़ा**=मुखाकृति। **कलंक**=बदनामी। **इस रोग····का वैद्य**=प्रेम रूपी रोग को दूर करने वाला। ललिता चन्द्रावली से कहती है कि तुझे जो प्रेम का रोग है, तेरे प्रिय से मिलाकर उसे दूर करने में मैं ही सहायक हूँगी। **ईंट पत्थर की नहीं हूँ**=हृदय-हीन नहीं हूँ।

[पृष्ठ ३२]

नैन लगे=किसी के प्रेम में डूबे हुए। **उघरि परत**=प्रेम का रहस्य प्रकट कर देते हैं। **खगे**=छिपना। **दुराव**=छिपाव। **दूरति नहिं**=छिपते नहीं। **प्रेम पगे**=प्रेम में डूबे हुए। **उघरे से डोलत**=घूँघट से बाहर प्रकट हो जाते हैं। **मोहन रंग रँगे**=कृष्ण के प्रेम में डूबे हुए। **पहेली बुझाना**=किसी रहस्य को छिपाने के लिए घुमा-फिराकर बातें करना। **रूसी जाती है**=नाराज हुई जाती है। **सकपकाना**=स्तब्ध होना, आश्चर्यचकित होना। **भेद**=रहस्य। **कारज**=काम। **सरिहै**=पूर्ण होगा। **मोसों**=मुझसे। **वेदन**=वेदना, दुःख, पीड़ा। **हरिहै**=दूर करेगा। **बापुरो**=बेचारा।

"छिपाये छिपत·········· ····रँगे ॥"

अर्थ—ललिता चन्द्रावली के अनुराग रंजित नेत्र देखकर उसके हृदय में जागृत प्रेम-पीड़ा को समझ जाती हैं और कहती हैं कि हे सखी! किसी से लगे हुए नेत्र नहीं छिपते। अर्थात् प्रयास करने पर भी इनके द्वारा

ललिता : पर सखी ! एक बड़े आश्चर्य की बात है कि जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्वदा नहीं रहती ।

चन्द्रावली : नहीं सखी ! ऊपर से दुखी नहीं रहती पर मेरा जी जानता है जैसे रातें बीतती हैं ।

मनमोहन तें बिछुरी जब सों,
तन आँसुन सों सदा धोवती हैं ।।
हरिचंद जू प्रेम के फंद परी,
कुल की कुल लाजहिं खोवती हैं ।
दुख के दिन को कोऊ भाँति बितै,
बिरहागम रैन संजोवती हैं ।
हमहीं अपुनी दशा जानैं सखी,
निसि सोवती मैं किधौं रोवती हैं ।।

ललिता : यह हो, पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही दशा में देखा और सर्वदा तुझे अपनी आरसी व किसी दर्पण में मुँह देखते पाया पर वह भेद आज खुला ।

हौं तो याही सोच मैं बिचारत रही री काहे,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत हैं ।
त्यौं ही हरिचंद जू वियोग औ संयोग दोऊ,
एक से तिहारे कछु लखि न परत है ।।
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात,
तू तौ परम पुनीत प्रेमपथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति ताहि,
आरसी मैं रैन दिन देखिबो करत है ।।

सखी ! तू धन्य है, बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द को सार्थक करने वाली और प्रेमियों की मंडली की शोभा है ।

चन्द्रावली : नहीं सखी ! ऐसा नहीं है, मैं जो आरसी देखती थी उसका कारण कुछ दूसरा है । हा ! (लम्बी साँस लेकर) सखी ! मैं जब आरसी में अपना मुँह देखती और अपना रंग पीला पाती थी

हृदय की प्रीत छलक पड़ती है। कोटियों उपाय करने पर भी वे घूँघट की ओट में छिपाये नहीं छिपते। कितना छिपाया जाय, किन्तु प्रेम में पगे नेत्र छिपाने से छिप नहीं सकते। वे सब कुछ प्रकट कर देते हैं। तेरे नेत्र श्रीकृष्ण के प्रेम-रंग में रँगे होने के कारण उन्मुक्त और निडर बने हुए हैं।

"तू दंडवत् करने……… पूछूँगी ॥"

अथ—यहाँ ललिता चन्द्रावली के प्रति विदग्धता एवं व्यंग्यपूर्ण कथन हैं। ललिता चन्द्रावली के हृदय में कृष्ण के प्रति उमड़ते हुए प्रेम को जान गई है, परन्तु चन्द्रावली चतुरता से प्रेम को छिपाने का प्रयास करती है, ललिता व्यंग्य करती हुई कहती हैं जो प्रेम को चतुराई से छिपाने का प्रयास कर रही, मैं तुझे दण्डवत् करती हूँ। तू अपना बायाँ चरण निकाल मैं उसकी पूजा करूँ, ललिता के कथन में व्यंग्य और कटाक्ष है।

[पृष्ठ ३४]

"हम भेदन जानिहै………करिहै ॥"

अर्थ—चन्द्रावली प्रेम को छिपाने का प्रयास करती है, परन्तु ललिता उसके अनुराग-रंजित नेत्रों तथा स्नेह-शिथिल शरीर को देखकर जान जाती है कि चन्द्रावली कृष्ण के प्रेम में पगी हुई है। वह कहती है कि हे सखी ! मुझसे छिपाने से तेरा काम न चल सकेगा। यदि तू मुझसे अपने हृदय के प्रेम को छिपायेगी, तो फिर तेरे कार्य किस प्रकार सिद्ध हो सकेगा। मुझसे सारा भेद कहे बिना तेरे प्रियतम से मिलने का कोई उपाय नहीं है, जो तेरी प्रेम-वेदना को दूर करने में सहायक हो सके। तू प्रेम-रोगिनी है। मैं तेरे रोग को दूर करने के लिए वैद्या हूँ, तू ही बता यदि रोगी अपना रोग न बताये तो बेचारा वैद्य क्या कर सकता है ?

मुँह चिढ़ाना=जान बूझकर तंग करना, हाव-भाव या कथन को बहुत बिगाड़कर नकल करना। निठुर=निष्ठुर, कठोर। लगौंही चितवनि=किसी के प्रेम में डूबी दृष्टि। दुरत=छिपना। दुराओ=छिपाओ। थिरत=स्थिर होती हैं। ललचौंही वानि=लालच-भरा स्वभाव। **निगोड़ी**=भाग्य-हीन, स्त्रियों की गाली। **निगुरे**=गुण-रहित। **रस-वस**=प्रेम के वशीभूत

तब भगवान् से हाथ जोड़कर मनाती थी कि भगवान् ! मैं उस निर्दयी को चाहूँ पर वह मुझे न चाहे, हा ! (आँसू टपकते हैं ।)

ललिता : सखी ! तुझे मैं क्या समझाऊँगी, पर मेरी इतनी विनती है कि तू उदास मत हो, जो तेरी इच्छा हो पूरी करने को उद्यत हूँ ।

चन्द्रावली : हा ! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे कुछ इच्छा नहीं है और न कुछ चाहती हूँ । तो भी मुझको उसके वियोग का बड़ा दुःख होता है ।

ललिता सखी ! मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है । संसार में जितना प्रेम होता है, कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं, पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख में सुख मानती है । यह तेरी चाल संसार से निराली है । इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है ।

(चन्द्रावली नेत्रों में जल भर कर मुख नीचा कर लेती है)

[दासी आकर]

दासी : अरी ! मैया खीझ रही है के वाहि घर के कछू और हू काम काज हैं के एक हा हा ठी ठी ही है, चल उठि, भोर सों यहीं पड़ी रही ।

चन्द्रावली : चल आऊँ, बिना बात की बकवाद लगाई । (ललिता से) सुन सखी ! इसकी बातें सुन, चल चलें (लंबी साँस लेकर) उठती है ।

[तीनों जाती हैं]

स्नेहालाप नामक पहिला अङ्क समाप्त ।।

तलफत = तड़पते हैं। दुरे = छिपने पर। सखि = शिक्षा। खीझ्यौ = झुँझलाया। बरज्यो = रोकने पर। मुरि = हटकर। बुते = बुझे हुए।

"लगौंही...........जानि ॥"

अर्थ—ललिता चन्द्रावली से कहती है कि किसी के प्रेम में डूबे हुए नेत्र छिपाने से नहीं छिपते। इनकी चितवनि कुछ और ही भाँति की होती है, चाहे जितना छिपाओ, इनसे प्रीति प्रकट हो जाती है। प्रेम-पगे नेत्र घूँघट के भीतर थोड़ी देर भी स्थिर नहीं रह पाते। इनका स्वभाव ही रूप माधुरी पर ललचाने का पड़ गया है। अभागी प्रीति किसी प्रकार भी छिपाने से छिप नहीं पाती, अन्त में इसके रहस्य को सब जान जाते हैं।

अलंकार—"लगौंही...........होति" में भेदकातिशयोक्ति अलंकार।

[पृष्ठ ३६]

"सखि ये नैना बहुत बुरे...........छुरे।"

अर्थ—चन्द्रावली अपनी प्रेम-विह्वलता की स्थिति को छिपाने का प्रयास करती है। ललिता उसके अनुराग रंजित नेत्रों से सारा प्रेम-रहस्य जान लेती है इस पर चन्द्रावली कहती है कि सखी! सारा दोष मेरे नेत्रों का ही है। ये नेत्र बहुत बुरे हैं। ये पहिले कृष्ण पर रीझकर अब रोते हैं। जब से इन्होंने प्यारे कृष्ण को देखा है और उनसे सम्बन्ध जोड़ा है, तभी से यह पराये हो गये हैं। श्री कृष्ण के ही प्रेम में वशीभूत होकर फिरते हैं और उनसे तनिक भी ओझल होते ही ये तड़फने लगते हैं। ये इतने अधिक धृष्ट हो गये हैं कि मेरा कहना तक नहीं मानते। ये निगोड़े नेत्र इतने दुष्ट हो गये हैं कि इन्होंने मेरी सारी प्रीति और शिक्षा भुला दी है। संसार इनके कार्य से खीझता है, परन्तु ये मेरा कहना नहीं मानते और अपने हठ से जरा भी नहीं मुड़ते। देखने में तो ये अमृतमय कमल लगते हैं, परन्तु वास्तव में ये विष के बुझे छुरे हैं।

"होत सखि ये उलझौंहैं नैन...........दैन।"

अर्थ—चन्द्रावली सारा दोष नेत्रों को देती है। ललिता कहती है कि मैं इन नेत्रों की रीति जानती हूँ। ये निगोड़े ऐसे ही होते हैं। किसी से उलझकर लग जाने का तो इनका स्वभाव ही होता हैं। एक बार उलझकर फिर ये नहीं

दूसरा अंक

स्थान—कैले का वन

समय संध्या का, कुछ बादल छाए हुए।

[वियोगिनी बनी हुई श्रीचन्द्रावली जी आती हैं]

चन्द्रावली : (एक वृक्ष के नीचे बैठकर) वाह प्यारे! वाह! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हैं; और निश्चय, बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता; जानें कैसे? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं; जिसने जो समझा है, उसने वैसा ही मान रखा। हा! यह तुम्हारा जो अखंड परमानन्दमय प्रेम है और जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शान्ति देने वाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने ही सुख में और अभिमान में डूबे हुए हैं, कोई स्त्री से वा पुरुष से उसको सुन्दर देखकर चित्त लगाना और उससे मिलने का अनेक यत्न करना, इसी को प्रेम कहते हैं और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी-चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं—पर प्यारे! तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है जिसे तुम आप देते हो। (कुछ ठहर कर) हाय! किससे कहूँ और क्या कहूँ, और क्यों कहूँ और कौन सुने और सुने भी तो कौन समझेगा!

जग जानत कौन है प्रेम-बिथा,
केहि सों चरचा या वियोग की कीजिये।
पुनि को कहीं मानै कहा समझैं कोउ,।
क्यों बिन बात की रारहि लीजिये।
नित जो 'हरिचन्द्र जू' बीतै सहैं,
बकिकै जग क्यों परतीतहि छीजिये।

सुलझते । ये सुलझना तो जानते ही नहीं हैं, कितनी ही इनको शिक्षा दो किन्तु ये अपना स्वभाव नहीं छोड़ते । यदि इसको कोई मना न करे, तो ये बैल की तरह मतवाले और उन्मत्त हो जाते हैं और सखि ! मैं क्या कहूँ, इन बैरियों के पीछे लेने के देने पड़ जाते हैं ।

"नैना वह छवि नाहिंन भूले..........सब हारे ।।"

अर्थ—चन्द्रावली का कथन ललिता के प्रति है । वह अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी ! मेरे नेत्र कृष्ण की सुन्दर छवि अब तक नहीं भूल पाये । खिले हुए कमल पुष्प के दल के समान बड़े और दया भरे हुए पत्रों से उनका चारों ओर देखना, उनका उस प्रकार आना, उनकी सुन्दर हँसी, चित्त को लुभा लेने वाली मुस्कराहट, उनकी बातें, उनका मुड़ना तथा नकारात्मक भाव व्यक्त करना और चारों ओर देखना, मन्द गति से गायों के पीछे हाथ में कमल लेकर फिरना आदि समस्त बातें और पान खाये मुख से उनका वेणु बजाना तथा पीताम्बर ओढ़े हुए उनकी छवि इन नेत्रों के सामने से नहीं हटती है । इन्हीं सुन्दर आकर्षणों के कारण मेरे नेत्र उनके वश में हो गये हैं और एक क्षण भी वह छवि देखकर उसे देखने से नहीं टलते । ये तन-मन-धन और सर्वस्व न्योछावर करके कृष्ण के चन्द्रमुख की छवि को अनि-मेष होकर देखते रहते हैं ।

अलंकार—'दया भरा....फूले, में उपमा, 'हरि-ससि-मुख' में रूपक ।

विशष—१. चन्द्रावली का प्रेम प्रयास-जनित है । उसका कृष्ण से मिलन हो चुका है । वह मिलन के पश्चात बिछुड़ने की स्थिति में है ।

२. यहाँ भारतेन्दु जी का भावुक कवि हृदय उमड़ पड़ा है ।

[पृष्ठ ३८]

"मनमोहन तें बिछुरीं रोवती हैं ।।"

अर्थ—चन्द्रावली ललिता से अपने वियोग की स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी ! जब से कृष्ण से वियोग हुआ है, तभी से मेरे नेत्रों से अविराम अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है और इनसे गिरे हुए अश्रुओं से शरीर भीगा बना रहता है । मेरी आँखें प्रेम के पाश में पड़कर कुल-मर्यादा को भी छोड़ बैठी हैं । ये दुःख के दिनों को तो किसी प्रकार व्यतीत कर लेती

सब पूछत मौन क्यों बैठि रही,

पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिए ॥

क्योंकि—

मरम की पीर न जानत कोय ।

कासों कहौं कौन पुनि मानैं बैठि रहीं घर रोय ॥

कोऊ जरनि न जाननहारी बे-मरहम सब लोय ।

अपुनी कहत सुनत नहि मेरी केहि समुझाऊँ सोय ।

लोक-लाज कुल की मरजादा दीनी है सब खोय ।

'हरीचन्द' ऐसेहि निबहैगी होनी होय सो होय ॥

परन्तु प्यारे ! तुम तो सुनने वाले हो ! यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो । प्यारे जिनके नाथ नहीं होते, वे अनाथ कहाते हैं । (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे ! जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों ?

पहिले मुसकाइ लजाइ कछू,

क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियो ।

पुनि नैन लगाइ बढ़ाइकै प्रीति,

निबाहन को क्यों कलाम कियो ॥

'हरिचन्द' भये निरमोही इतै निज,

नेह को यों परिनाम कियो ।

मन माँहि जो तोरन ही की हुती,

अपनाइकै क्यों बदनाम कियो ॥

प्यारे ! तुम बड़े निरमोही हो । हा ! तुम्हें मोह भी नहीं आता ? (आँख में आँसू भर कर) प्यारे । इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं, तो तुम किस नाते इतना सताते हो ? क्योंकि—

जिय सूधी चितौन की साधै रही,

सदा बातन मैं अनखाय रहे ।

है, परन्तु विरह में दुःखदायिनि रात्रि में आकुलतापूर्वक चिन्तन किया करती हैं। हे सखी! मैं अपनी दशा स्वयं जानती हूँ। मैं रात्रि में सोया करती हूँ अथवा रोया करती हूँ। अर्थात् रात्रि रोते ही व्यतीत होती है और सोने का अवसर नहीं मिलता।

विशेष—वियोग की उन्माद और प्रलाप जनित अवस्था है।

हौं तो याही……………करत है॥

अर्थ—ललिता चन्द्रावली की प्रेम-दशा सुनकर कहती है कि हे सखी! मैं तेरे हाथों में प्रायः दर्पण देखती हूँ और इसी के साथ में विचार करती रहती हूँ कि तेरे हाथ से एक क्षण को भी दर्पण क्यों नहीं दूर होता। तेरे लिए तो वियोग तथा संयोग दोनों ही एक समान दिखायी पड़ते हैं। परन्तु आज मैं यह समझ सकी हूँ कि तू प्रेम के पवित्र मार्ग पर विचरण कर रही है, और तेरे नेत्रों में प्यारे श्री कृष्ण की मूर्ति बस रही है। यही कारण है कि तू रात-दिन दर्पण में अपना मुख देखा करती है।

[पृष्ठ ४०]

मैं तो पहिले ही……………करने वाली है।

सन्दर्भ—यहां ललिता चन्द्रावली के अनन्य प्रेम की प्रशंसा करती हुई कहती है:—

व्याख्या—हे सखी। तू और तेरा प्रेम धन्य है। तेरा प्रेम स्वार्थ और इच्छाओं से सर्वथा रहित है। संसार के प्रेम में तेरे प्रेम की समता नहीं मिल सकती। क्योंकि संसार में जितना प्रेम होता है, उसमें कुछ न कुछ इच्छा और स्वार्थ की मात्रा अवश्य होती है। संसार के लोगों की यह प्रकृति होती है कि वे अपने ही सुख मे सुखी होते हैं। परन्तु तेरे प्रेम की रीति बड़ी ही पवित्र और विलक्षण है। तू इच्छा रहित होकर प्रियतम से प्रेम करती है। तू प्रेम का प्रतिकार नहीं चाहती। तू प्रीतम के सुख में सुखी होती है। इस प्रकार तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है। तेरे अनन्य एवं पवित्र प्रेम की समता संसार में खोजने से नहीं मिल सकती।

हँसिकै 'हरिचन्द्र' न बोले कभूं,
जिय दूरहि सों ललचाय रहे ।।
नहिं नेकु दया उर आवत है,
करिके कहा ऐसे सुभाय रहे ।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले,
जिहि के बदले यों सताय रहे ।।

हा !

क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती ? लोग तो सात पैर संग चलते हैं उसका जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है ! नहीं नहीं, तुम्हारा तो ऐसा सुभाव नहीं था, यह नई बात है, यह बात नई है या तुम आप नये हो गये हो ? भला कुछ तो लाज करो ।

कित कों ढरिगौ वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ ।
'हरिचन्द्र' भये हौ कहा के कहा,
अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ ।।
नित को मिलनो तो किनारे रह्यौ,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइ के नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ ।।

प्यारे ! जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लेते । क्योंकि :

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहैं,
तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं ।
विरुदावली आपुनी राखौ मिलौ,
मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं ।।
'हरिचन्द जू' होनी हुती सो भई,
इन बातन सों कछू हात नहीं ।

अवस्था को पहुँच जाती है। वह वृक्षों और लताओं से प्रियतम का पता पूछती फिरती है।

चन्द्रावली केले के वन में है। उसके स्वगत प्रलाप विरह का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। वनदेवी, संध्या और वर्षा सखियों के कथोपकथन में उसके हृदय की वेगवती वियोग-धारा प्रवाहित हो उठती है। चन्द्रावली के विरहमय प्रलाप के पद्य बड़े ही अनुभूतिपूर्ण और काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

[पृष्ठ ४२]

"वाह प्यारे ! वाह !........देते हो।"

विलक्षण = अनोखा । अखण्ड = पूर्ण । ज्ञान-बैराग्यादिकों को तुच्छ करके शान्ति देने वाला है = शास्त्र-ज्ञान, गृह-त्याग आदि का पुष्टिमार्ग में उतना महत्व नहीं है, जितना प्रेम का; भगवान के प्रति समर्पण और सच्चे अनुराग से जो शान्ति मिलती है, उसके सामने ज्ञान और वैराग्य आदि तुच्छ हो जाते हैं। अभिमान = ज्ञान, धर्म और लौकिक सत्ता का अभिमान। चित्त लगाना = प्रेम करना। जिसे तुम आप देते हो = जिस पर आपकी कृपा होती है।

व्याख्या—हाँ चन्द्रावली का स्वगत कथन है। वह केले के वन में है, वह कृष्ण के प्रेम की विलक्षणता पर प्रकाश डालती हुई कहती है कि कृष्ण और प्रेम उनकी कृपा से प्राप्त होता है। परन्तु स्वयं कृष्ण और उनका प्रेम बड़ा ही विलक्षण है। इसका भेद कोई नहीं जानता है। इसका भेद जानना सहज भी नहीं है; क्योंकि इसके सभी अधिकारी भी तो नहीं होते। सभी उस प्रेम को नहीं पा सकते। कृष्ण के अखण्ड प्रेम को कोई नहीं जान सका है, जिसने उनको जैसा समझा है, वह उसे वैसा ही मान बैठा है। कृष्ण का प्रेम परमानंद को देने वाला है। वह शास्त्र-ज्ञान एवं वैराग्य से भी बढ़कर है। ज्ञान और वैराग्य से जो शान्ति नहीं मिलती, वह कृष्ण-प्रेम से मिलती है, परन्तु उस परमानन्दमय कृष्ण-प्रेम को कोई भी नहीं समझता। सारे मनुष्य अपने ही सुख में डूबे हुए हैं। कोई स्त्री-पुरुष के प्रेम को ही आदर्श प्रेम समझ कर उसी

अपनावते सोचि बिचारि तबै,
जलपान कै पूछनो जात नहीं ॥
प्राणनाथ!—(आँखों में आँसू उमड़ उठे) अरे नेत्रों! अपने किए का फल भोगो।
धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम,
कौन सों पूछि कै सो मोहि भाखौ।
त्यौं सब लाज तजी छिन मैं,
केहिके कहे एतौ कियो अभिलाखौ॥
काज बिगारि सबै अपुनो,
'हरिचन्द जू' धीरज क्यौं नहिं राखौ।
क्यों अब रोइकै प्रान तजौ,
अपुने किये को फल क्यों नहिं चाखौ॥

हा!
इन दुखियान को न सुख सपने हू मिल्यौ,
योंही सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचन्द जू' की बीती जानि औध जो पैं,
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायँगी॥
देख्यौ एक बार हू न नैन भरि तोहि यातैं,
जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी।
बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रहि जायँगी॥
परन्तु प्यारे! अब इनको दूसरा कौन अच्छा लगेगा जिसे देख कर यह धीरज धरेंगी, क्योंकि अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पायेंगी?
बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिये कहि पेखिए का।
सुख छाँड़िके संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेखिए का॥

में निमग्न रहना है और कुछ लोग अनेक प्रकार के साधनों को ही कृष्ण के प्रेम को प्राप्त करने का माध्यम समझ बैठते हैं, परन्तु कृष्ण का प्रेम इन दोनों प्रकार के प्रेमों से विलक्षण हैं। यह अमृतमय प्रेम उसी को मिलता है, जिस पर भगवान श्री कृष्ण स्वयं कृपा करते हैं।

"जग जानत कौन है..................दीजिए ॥

राह = झगड़ा। बकिकै = बकवास कर, कहकर। परतीतहि = विश्वास को घटाना।

अर्थ—यहाँ चन्दावली का स्वगत कथन है। वह कृष्ण के प्रेम-वियोग में विह्वल हो रही है। वह अपनी वियोग-कथा किससे कहे ? उसे कौन समझ सकता है, क्योंकि संसार उसकी प्रेम-व्यथा को नहीं जानता। उसकी इस वियोग-व्यथा को कौन जानने वाला है, जिसमें वह इसकी चर्चा करे, फिर उसकी इस वियोग चर्चा को कौन सह सकता है और कौन समझ सकता है ? अतः इसे कहकर बिना बात का झगड़ा और विवाद क्यों लिया जाय ? जो कुछ अपने पर बीते उसे स्वयं सहन करना चाहिए। इस वियोग-व्यथा को व्यक्त करने से प्रेम की मर्यादा घटती प्रतीत होती है ! परन्तु मुझे मौन देखकर लोग मुझसे मौन होने का कारण पूछते हैं, हे प्यारे ! तुम्हीं बतलाओ कि मैं उनको क्या उत्तर दूँ।

[पृष्ठ ४६]

मरम की पीर = हृदय की मार्मिक व्यथा। बे-मरहम = निर्दयी, भेद न जानने वाला। लोय = लोग।

अर्थ—वियोगजनित तीव्र अनुभूति में विह्वल होकर चन्द्रावली कहती है कि मेरी इस प्रेम-पीड़ा को कोई नहीं जान सकता। इसके सम्बन्ध में मैं किससे कहूँ। यदि कहा भी जाय, तो इस पर विश्वास कौन करेगा। इसीलिए मैं रोकर घर बैठी रही। सभी निष्ठुर है, हृदय की जलन जानने वाला कोई नहीं है। सभी अपनी ही बात कहते हैं, मेरी सुनने वाला कोई नहीं है। मैं अपनी व्यथा किसको समझाऊँ। मैंने लोक-लज्जा तथा कुल की सारी मर्यादा खो दी है। अब तो मेरा दूसरी तरह निर्वाह होगा। जो कुछ भी होना हो, वह होकर रहे, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है।

'हरिचन्द जू' हीरन कों बेवहार,
कै काँचन कों लै परेखिए का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
उन आँखिन सों अब देखिए का॥

इससे नेत्र! तुम तो अब बन्द ही रहो (आँचल से नेत्र छिपाती हैं)

[बनदेवी १, संध्या २, और वर्षा ३, आती हैं]

संध्या : अरी बनदेवी! यह कौन आँखिनैं मूँद के अकेली या निरजन बन में बैठि रही है?

बनदेवी : अरी! का तू याहि नाँय जानै! यह राजा चन्द्रभानु की बेटी चन्द्रावली है।

वर्षा : तो यहाँ क्यों बैठी है?

बनदेवी : राम जानै, (कुछ सोच कर) अहा जानी! अरी, यह तो सदा ह्याँई बैठी बक्यौ करै हैं और यह तो या बन के स्वामी के पीछे बावरी होय गई।

वर्षा : तो चलौ, यासू कछू पूछैं।

बनदेवी : चल।

(तीनों पास जाती हैं)

बनदेवी : (चन्द्रावली के कान के पास) अरी मेरी बन की रानी चन्द्रावली (कुछ ठहर कर) राम। सुनैहू नहीं है। (और ऊँचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली! (कुछ ठहर कर) हाय! यह तो अपने सों बाहर होय रही है अब काहें कों सुनैगी! (और ऊँचे सुर से) अरी! सुनै नाँयनै रे मेरी अलख लड़ैती चन्द्रावली!

चन्द्रावली : (आँख बन्द किए ही) हाँ हाँ अरी चिल्लाय है, चोर भाग जायगो।

१—हरा कपड़ा, पत्ते का किरीट, फूलों की माला। २—गहिरा नारंगी कपड़ा। ३—रंग साँवला, लाल कपड़ा।

पहिले मुसुकाय............बदनाम कियो ॥

छाम = चीण । कलाम = प्रतिज्ञा । निर्मोही = निष्ठुर ।

अर्थ—चन्द्रावली विरह कातरता में कृष्ण को सम्बोधन करती हुई कहती है कि पहिले तुमने अपनी मधुर मुस्कान से अपनी ओर आकर्षित कर लिया और फिर विमुख होकर मेरे शरीर को चीण कर दिया । पहले तो तुमने नैन लड़ाकर प्रीति निबाही और जीवन भर प्रेम का निर्वाह करने की प्रतिज्ञा भी की । फिर तुम इतने निर्मोही होकर मुझे विरह में तड़पाकर अपने प्रेम का यह परिणाम क्यों कर रहे हो ? यदि तुम्हारे मन में प्रीति तोड़ने की ही बात थी, तो मुझे अपनाकर बदनाम क्यों किया ।

विशेष—विप्रलंभ शृङ्गार ।

जिय सूधी चितौनि............सताय रहे ॥

साध = इच्छा । **अनखाय रहे** = क्रुद्ध होते रहे । **नेकु** = किंचित भी ।

अर्थ—यहाँ चन्द्रावली प्रियतम कृष्ण के निष्ठुर व्यवहार के प्रति उपालंभ देती हुई कहती है कि मेरे मन में सदैव आपकी प्रेमभरी सीधी चितवन देखने की इच्छा रही, परन्तु आप बात-बात में मुझसे अप्रसन्न होते रहे । आप मुझसे हँसकर कभी नहीं बोले और दूर ही से मुझे तरसाते रहे । आपने ऐसा निष्ठुर स्वभाव कर लिया है कि मेरे ऊपर आपको तनिक भी दया नहीं आती । हे प्यारे ! तुमने पहले मुझे कौन सा सुख दिया था, जिसके बदले में इस प्रकार सता रहे हो ।

[पृष्ठ ४८]

सात पैर = सात पदी, विवाह के समय की फेरी । **कित कों ढरिगो** = कहाँ चला गया । **साजत है** = सजाते हो या प्रदर्शित करते हो । **अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ** = न बोलने में शोभा नहीं देते । **किनारे रह्यौ** = बहुत दूर हो गया । **दुरि** = छिपकर । **रूसिबे** = रुष्ट होना ।

अर्थ—चन्द्रावली प्रियतम कृष्ण को उनकी प्रेम-निष्ठुरता के लिये उपालम्भ देती हुई कहती है कि तुम्हारा पहले का वह प्रेम कहाँ चला गया और यह नया व्यवहार क्यों दिखला रहे हो ? तुम क्या से क्या हो गये हो ? मुझसे बोलना भी अब तुम्हें नहीं सुहाता । नित्य का मिलन तो बहुत दूर की

बनदेवी : ये कौन सो चोर ?

चन्द्रावली : माखन को चोर, चीरन कों चोर और मेरे चित्त को चोर।

बनदेवी : सो कहाँ सों भाग जायगो ?

चन्द्रावली : फेर बके जाय है, अरी मैंने अपनी आँखिन में मूँदि राख्यौ है। सौ तू चिल्लायेगी तो निकसि भागैगो।

[बनदेवी, चन्द्रावली की पीठ पर हाथ फेरती है]

चन्द्रावली : (जल्दी से उठ, बनदेवी का हाथ पकड़ कर) कहो प्राणनाथ ! अब कहाँ भागोगे !

बनदेवी हाथ छुड़ाकर एक ओर और वर्षा-संध्या दूसरी ओर वृक्षों के पास हट जाती हैं]

चन्द्रावली : अच्छा ! क्या हुआ, यों ही हृदय से भी निकल जाओ तो जानूँ, तुमने हाथ छुड़ा लिया तो क्या हुआ, मैं तो हाथ नहीं छोड़ने की हा ! अच्छी प्रीति निबाही !

[बनदेवी सीटी बजाती है]

चन्द्रावली : देखो दुष्ट को मेरा तो हाथ छुड़ा कर भाग गया, अब न जानैं कहाँ खड़ा बंशी बजा रहा है। अरे छलिया कहाँ छिपा है ? बोल, बोल कि जीते जी न बोलेगा (कुछ ठहर कर) मत बोल, मैं आप पता लगा लूँगी। (वन के वृक्षों से पूछती है) अरे वृक्षों ! बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है ? क्यों रे मोरो ! इस समय नहीं बोलते ? नहीं तो रात को बोल-बोल के प्राण खाये जाते थे, कहो न वह कहाँ छिपा है ?

अहो-अहो वन रुख कहूँ देख्यौ पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुड़ाई कहौ वह कितै सिधारौ।।
अहो कदम्ब अहो अम्ब निम्ब अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यौ कहुँ मनमोहन सुन्दर नन्दलाला।।
अहो कुंज बन लता विरुध तृन पूछत तोसों।
तुम देखे कहुँ श्याम मनोहर कहहुँ न मोसों।।

बात हो गई, अब तो मेरा मुख देखते ही दूर भागने लगते हो। पहले अपनाकर और प्रेम बढ़ाकर अब तुमको रुष्ट होने में लज्जा भी नहीं आती।

विरुदावली=यश, शरण में आये हुए की रक्षा करने का यश। **कुछ हात नहीं**=कुछ हाथ नहीं लगता। **पूछनो जात नहीं**=पानी पीकर जाति नहीं पूछनी चाहिए।

अर्थ—हे प्यारे! सब लोग मुझे तुम्हारा कहते हैं, सो क्या तुमको सुनाई नहीं पड़ता। अपनी विरुदावली की रक्षा करके मुझसे मिलो। मेरे बारे में तुमको सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है, जो कुछ होना था, वह तो अब हो गया। अब इन बातों में कोई प्रयोजन नहीं निकल सकता। तुमने मुझे पहले ही सोच समझकर अपनाया होता। क्यों पानी पीने के पश्चात् भी पानी पिलाने वाले की जाति-पाँति पूछने की आवश्यकता रह जाती है?

[पृष्ठ ५०]

धाइकै=दौड़कर। **एतौ**=इतना। **भाखौ**=कहो। **औधि**=अवधि। **जौन-जौन**=जिस-जिस। **देखि लीजै**=रहि **जायेंगी**=दर्शन की लालसा में आँखें खुली ही रह जायेंगी।

धाइकै...................चाखौ ॥

अर्थ—वियोग-कातर चन्द्रावली अपने नेत्रों को सम्बोधन करती हुई कहती है कि तुम किससे पूछकर कृष्ण से जानकर मिलीं। मुझे यह तो बताओ कि यह सब तुमने किससे पूछकर किया? तुमने क्षणभर में अपने सब कामों को बिगाड़ लिया है। अब धैर्य क्यों नहीं रखती और रोकर प्राण क्यों छोड़े दिये रही हो? तुम अपने किये का फल क्यों नहीं भोगती?

इन दुखियान...................जाँयगी ॥

अर्थ—चन्द्रावली पुनः अपने विरह-कातर नेत्रों के लिये कहती है कि इनको स्वप्न में सुख नहीं मिला। ये सदैव इसी प्रकार आकुल होती रही हैं। प्यारे कृष्ण के आने की अवधि समाप्त जानकर प्राण चले जाते हैं परन्तु ये इतनी दुष्ट हैं कि साथ नहीं जाती हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ जाती हैं, इन्हें

अहो जमुना अहो खग मृग अहो गोबरधन गिरि।
तुम देखे कहुँ प्रान पियारे मनमोहन हरि॥

(एक-एक पेड़ से जाकर गले लगती है)

[बनदेवी फिर सीटी बजाती है]

चन्द्रावली : अहा ! देखो, उधर खड़े खड़े प्रान पियारे मुझे बुलाते हैं, तो चलो उधर ही चलें (अपने आभरण सँवारती है)।

[वर्षा और संध्या पास आती हैं]

वर्षा : (हाथ पकड़ कर) कहाँ चली सजिकै ?—

चन्द्रावली : पियारे सों मिलन-काज।

वर्षा : कहाँ तू खड़ी ?

चन्द्रावली : प्यारे ही को यह धाम है।

वर्षा : कहा कहै मुख सों ?

चन्द्रावली : प्यारे प्रान प्यारे—

वर्षा : कहा काज है ?

चन्द्रावली : प्यारे सों मिलन मोहि काम है।

वर्षा : मैं हूँ कौन बोल तो ?—

चन्द्रावली : हमारे प्रान प्यारे हो न ?—

वर्षा : तू है कौन ?—

चन्द्रावली : पातम पियारे मेरो नाम है।

संध्या : (आश्चर्य से) पूछत सखी एकै कै उतर बतावति, जकी सी एक रूप आज श्यामा भई श्याम है।

[बनदेवी जाकर चन्द्रावली की पीछे से आँख बन्द करती है]

चन्द्रावली : कौन है; कौन है ?

बनदेवी : मैं हूँ।

चन्द्रावली : कौन तू है ?

बनदेवी : (सामने आकर) मैं हूँ, तेरी सखी वृन्दा।

चन्द्रावली : तो मैं कौन हूँ ?

बनदेवी : तू तो मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली है न ! तू अपने हूँ को भूल गई ?

पश्चाताप करना पड़ता है । हे प्राण प्यारे ! बिना तुम्हारे दर्शन मिले ये आंखें, अन्त समय में भी खुली ही रह जायँगी ।

बिछुरे पिय के...........देखिए का ॥

अर्थ—चन्द्रावली कहती है कि प्यारे कृष्ण के वियोग में मेरे लिए यह संसार ही सूना हो गया है । अब क्या किया जाय और संसार में क्या देखा जाय ? प्रियतम कृष्ण के मिलन के आनन्द के सुख को छोड़कर संसार के इन समस्त सुखों को किस गणना में गिना जाय ? जिसने हीरों का व्यवहार किया है, उसके लिए काँच की क्या महत्ता ? अतः हे प्राण प्यारे ! मेरे जिन नेत्रों में आपकी मंजुल मूर्ति बसी हुई है, अब उनसे संसार की अन्य वस्तुएँ क्या देखी जायँ ?

[पृष्ठ ५२, ५४, ५६, ५८]

सुनैह नहीं है=सुनती नहीं है । अपनी सीमा की मर्यादा से बाहर होय रही है=होश नहीं है । सुर=स्वर, आवाज । अलख=अनोखी । प्राण खाये रहे थे=व्याकुल कर रहे थे । रूख=वृक्ष । कितै=किस ओर कहाँ । अंब= आम । निंब=नीम । वकुल=मौलशिरी । तमाल=काली छाल का एक ऊँचा वृक्ष विशेष । विरुध=वृक्ष । खग=पक्षी । मृग=पशु ।

आभरण=आभूषण, गहने ।

धाम=घर, स्थान । जकी=थमित, स्तब्ध ।

एक रूप....श्याम है=चन्द्रावली के रूप में आज श्याम और श्यामा की भिन्नता दूर हो गई है । खोजि रही है=ढूंढ़ रही है ।

रस की बात=प्रेम की बात । बिधिना=ब्रह्मा या बिधाता । निबही= निर्वाह हुआ । बिसारी=भूलना । अनत=अन्यत्र ।

आनन्द के घन=आनन्द को देने वाले अर्थात् श्रीकृष्ण ।

चातक= =पपीहा । पानिप=पानी । पीत पटै=पीताम्बर ।

विशेष—'चातकि सी' में उपमा अलंकार है ।

पानिप रूप सुधा—में 'रूपक' और श्लेष अलंकार है । चाहे गरजो चाहे लरजो=चन्द्रावली को श्री कृष्ण के गरजने और तरजने अथवा अप्रसन्न होकर कष्ट देने की कोई परवाह नहीं है । उसके मन में दृढ़ रूप से अन्ततः उनकी

चन्द्रावली : तो हम लोग अकेले वन में क्या कर रही हैं ?

बनदेवी : तू अपने प्राणनाथै खोजि रही है न ?

चन्द्रावली : हा ! प्राणनाथ ! हा ! प्यारे अकेले छोड़ के कहाँ चले गये। नाथ ! ऐसी ही बदी थी ! प्यारे ! यह बन इसी विरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ बिहार करने को ! हा !

जो पैं ऐसिहि करन रही।
तो फिर क्यौं अपने मुख सों तुम रस की बात कही।।
हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही।
सो उलटी कीनी विधिना ने कछू नाहिं निबही।।
हमैं बिसारी अनत रहे मोहन और चाल गही।
'हरिचन्द' कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहिं जात कही।।

[रोती है]

बनदेवी : (आँखों में आँसू भर के) प्यारी ! अरी इतनी क्यों घबराई जाय है, देख तो यह सखी खड़ी हैं सो कहा कहैंगी।

चन्द्रावली : ये कौन हैं ?

बनदेवी : (वर्षा को दिखाकर) यह मेरी सखी वर्षा है।

चन्द्रावली : यह वर्षा है तो हा ! मेरा वह आनन्द का घन कहाँ है ? हा ! मेरे प्यारे ! प्यारे कहाँ बरस रहे हो ? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं ?

बलि साँवरी सूरत मोहनी मूरत,
आँखिन को कबौं आइ दिखाइये।
चातकि सो मरैं प्यासी परीं,
इन्हैं पानिप रूप सुधा कबौं प्याइये।।
पीत पटै बिजुरी से कबौं,
'हरिचन्द जू' धाइ इतै चमकाइये।
इतहू कबौं आइ कै आनन्द के घन,
नेह का मेह पिया बरसाइये।।

प्यारे ! चाहे गरजो चाहे लरजो, इन चातकों की तो तुम्हारे

कृपा का विश्वास है। यही उसका हार्दिक प्रेम है। पुष्टिमार्ग के अनुसार यहाँ रागानुगा भक्ति को पुष्ट किया गया है।

[पृष्ठ ६०, ६२, ६४]

करुणा = दया।

विशेष—इस कथन में गोस्वामी जी की भाँति चातक और मेघ की प्रति का आदर्श प्रस्तुत किया गया है यथा—

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास॥

\+ \+ \+

यथा—घन गरजो बरसो उपल पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक॥

पंडिताइन = ज्ञानी। कुलकानि = कुल की मर्यादा। पसारना = फैलाना।

चवाइन—पीठ पीछे निंदा करने वाली। संकोचन = सब प्रकार का संकोच। भरि लोचन = आँख भरके।

शिष्टाचार = आदर-सत्कार। कुलच्छनी = बुरे लक्षणों वाली, बुरी। सबी = सब ही।

पेख = देखकर। रवि = सूर्य। ताप = गर्मी, दुःख। नसाइ = नष्ट करके। भाइ = भाव। अति छवि सों छयौ = अत्यन्त भाव से भरकर सुशोभित हो रहा है। गोरज = सन्ध्या समय वन से लौटती हुई गायों के खुरों से उड़ने वाली धूल। उडगन = तारों का समूह। निसाकर = चन्द्रमा।

विशेष—प्रथम पंक्ति में अनुप्रास तथा भ्रांतिमान अलंकार है। द्वितीय पंक्ति में 'प्रतीप' अलंकार है।

तृतीय पंक्ति में हरिचन्द ताप—'श्लेष' है।

'गोरज समूह'—गोप-कुल-कुमुद 'निसाकर' में रूपक अलंकार है।

यह छन्द कृष्ण व चन्द्रमा दोनों पक्षों पर घटित होता है। 'श्लेष' पुष्ट रूपक का सुन्दर उदाहरण है।

बावरी = पगली। तपन = गरमी। ब्योहरि = व्यवहार, काम-काज। ठयो = ठाना। विहाय = व्यतीत। हत-भागिनी = भाग्यहीन।

बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह कौन सुनेगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया, प्यारे ! तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक याचक के माँगने पर नदी नद भर देते हो तो चातक के इस छोटे चंचु पुट भरने में कौन श्रम है; क्योंकि प्यारे हम दूसरे पक्षी नहीं है कि किसी भाँति प्यास बुझा लैंगे । हमारे तो हे श्यामघन ! तुम्ही अवलम्बन हो, हा !

(नेत्रों में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित होकर देखती हैं)

बनदेवी : सखी ! देखि तौ कछू इनकी हूँ, सुन, कछू इनकी हूँ लाज कर, अरी ! यह तौ नई आई हैं, ये कहा कहैंगी ?

संध्या सखी ! यह कहा कहै है, हम तौ याकी प्रेम देखि बिना मोल की दासी होय रही हैं और तू पंडिताइन बनि कै ज्ञान छाँटि रही है ।

चन्द्रावली : प्यारे ! देखो ये सब हँसती हैं—तो हंसैं, तुम आओ, कहाँ वन वन में छिपे हो । तुम मुँह दिखलाओ, इनको हंसने दो ।

धारन दीजिए धीर दिए,
कुलकानि को आज बिगारन दीजिए ।
मारन दीजिए लाज सबै,
हरिचद, कलंक पसारन दीजिए ।।
चार चवाइन कों चहुँ ओर सों,
सोर मचाई पुकारन दीजिए ।
छाँड़ि संकोचन चंद मुखै,
भरि लोचन आजु निहारन दीजिए ।।

क्योंकि—

ये दुखियाँ सदा रोयो करैं,
बिधवा इन को कबहूँ न दिये सुख ।
चार चवाइन के डर,
देख्यो कियौं उन्हीं को खिए रुख ।।

[पृष्ठ ६६, ६८, ७०, ७२]

झूठन के सरताज = झूठों के बादशाह। मिथ्यावाद जहाज = झूठी बातों के खजाने।

टारि = हटाकर, छोड़कर। मति = मत। परसौ = स्पर्श करो। रंग और के रंग = और किसी के प्रति आसक्त हो। अधर = ओठ। तुव = तेरे।

निरलज = निर्लज्ज, बेशर्म। अनूठे = अनोखे।

विशेष—यह कथन खण्डिता नायिका का द्योतक है।

रैन = रात। मतो = राय। दिवाकर = सूर्य।

एक मतो..........................बताइए।

शायद तुमने और सूर्य ने सलाह कर रखी है। जब तुम रूठ जाते हो तब वह भी रूठ जाता है। जब तुम दर्शन नहीं देते हो, तब वह भी दर्शन नहीं देता है। श्रीकृष्ण के वियोग में रात काटने से नहीं कटती है। वह अत्यधिक बड़ी मालूम पड़ने लगती है। वियोग की रात के लम्बे होने के कारण सूर्य का रूठ जाना बताया है। 'काव्यलिंग' अलंकार है।

कनौड़ी = वशीभूत, खरीदी हुई। पौन = पावन। भौन = भवन। गौन = गवन, गति। राधिका-रौन = राधिका-रमण अर्थात श्रीकृष्ण जी। मौन निवारो = चुप्पी छोड़ दो। मोहन व्रतधारी = श्रीकृष्ण की भाँति प्रेम का व्रत धारण करने वाला। सरवर = तालाब। मानस = मन। गोभा = अंकुर। वेदन = पीड़ा। भानु = सूर्य। तम = अन्धकार।

विशेष—"हे सारस"—कहते हैं कि सारस दम्पति में जब एक की मृत्यु हो जाती है तब दूसरा भी प्राण त्याग देता है।

'दुख तम' में रूपक अलंकार है।

ओट = आड़। हत्यारिन = हत्यारी, बड़ी दुखदाई। पावस में वियोगिनी की विरह व्यथा अत्यधिक बढ़ जाती है। इसलिए वह वियोगिनियों के लिए प्राण-हन्ता मानी जाती है।

रूप-सुधा = दर्शन रूपी अमृत।

उमाह—उत्साह, उमंग। सुहावने = सुन्दर। गति = दशा।

लाह = लाभ। वज्र = कठोर

छाँड़यौ सबै 'हरिचंद' तऊ न,
गयी जिय सों यह हाय महा दुख।
प्रान बचैं केहि भाँतिन सों,
तरसैं जब दूर सो देखिबैं कों मुख ॥
[रोती है]

बनदेवी : (आँसू अपने आँचल से पोंछ कर) तौ ये यहाँ नाँय रहिबे की, सखी ! एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जायँ तब जो चाहिए सो करियो।

चन्द्रावली : अरी सखियो ! मोहि छमा करियो, अरी देखो तो तुम मेरे पास आई और हमने तुमारौ कछू सिष्टाचार न कियो ! (नेत्रों में आँसू भर कर हाथ जोड़ कर) सखी ! मोहि छमा करियो और जानियो कि जहाँ मेरी बहुत सखी हैं उनमें एक ऐसी कुलच्छिनी हूँ है।

संध्या : नहीं नहीं सखी ! तू तो मेरी प्रानन सों हूँ प्यारी।

वर्षा : हे सखी, हम सच कहैं तेरी सी साँची प्रेमिन एक हूँ न देखी; ऐसे तो सबी प्रेम करैं पर तू सखी धन्य है।

चन्द्रावली : हाँ सखी ! और (संध्या को दिखाकर) या सखी को नाम का है ?

बनदेवी : याकों नाम संध्या है।

चन्द्रावली : (घबड़ा कर) संध्यावली आई ? क्या कुछ संदेसा लाई ? कहो कहो प्रान प्यारे ने क्या कहा ? सखी बड़ी देर लगाई। (कुछ ठहर कर) संध्या हुई ? संध्या हुई ? तो वह वन से आते होंगे। सखियो ! चलो झरोखों में बैठे, यहाँ क्यों बैठी हो ?
[नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है, चन्द्रमा को देखकर]

अरे अरे ! वह देख आया,
[उँगली से दिखाकर]
देख सखी देख अनभेख ऐसो भेख यह,
जाही पेख तेज रबिहू की मंद ह्यौ गायो।

यह अङ्क 'प्रियान्वेषण' अङ्क है। इसमें चन्द्रावली प्रियतम को खोजती हुई पागल सी हो जाती है। उसका वियोग चरमसीमा पर पहुँच जाता है। विप्रलंभ श्रृंगार की सम्पूर्ण सामग्री सामने आ जाती है। चन्द्रावली 'आश्रय', कृष्ण 'आलंबन', चन्द्रावली के कथन 'अनुभाव' हैं। उन्माद, प्रलाप, स्मरण आदि विरह-दशाएँ हैं। वर्षा एवं वन का वातावरण उद्दीपन का कार्य करता है।

'हरिचंद' ताप सब जिय को नसाइ चित,
आनन्द बढ़ाइ माइ अति छबिसों छयो ॥
ग्वाल-उड़ुगन बीच बेनु को बजाइ सुधा,
रस बरखाइ मान कमल लजा दयो ।
गोरज समूह घन पटल उघारि वह,
गोप-कुल-कुमद-निसाकर उदै भयो ॥
चलो चलो उधर चलो (उधर दौड़ती है)

बनदेवी : (हाथ पकड़ कर) अरी बावरी भई है, चन्द्रमा निकस्यो है कै वह वन सों आवै है ।

चन्द्रावली : (घबड़ाकर) का सूरज निकस्यो ? भोर भयो ? हाय ! हाय ! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसे सही जायगी । अरे भोर भयो ! हाय भोर भयो ! सब रात ऐसे ही बीत गई । हाय फेर वही घर के ब्यौहार चलेंगे । फेर वही नहानो, वही खानो, वेई बातें, हाय ।

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं,
अटके कित कौन विचार लयो ।
नहिं जानि परै 'हरिचन्द' कछू,
विधि ने हम कों हठ कौन ठयो ॥
निसि आजहू की गई हाय विहाय,
पिया बिनु कैसे न जीव गयो ।
हत-भागिनी आँखिन को नित के,
सदु देखिवे की फिर भोर भयो ॥

तौ चलो घर चलैं, हाय हाय ? माँ सों कौन बहाना करूँगी, क्योंकि वह जाते ही पूछेगी कि सब रात अकेली बन में कहाँ करती रही (कुछ ठहर कर) पर प्यारे ? भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहाँ रहे ? क्यों, देखों हम से तो झूठ बोले न ! बड़े झूठे हो, हाँ ! अपनो से झूठ तो मत बोला करो; आओ आओ अब तो आओ ।

[छन्द पृष्ठ ६४]

"देखि सखी देख अनभेख ऐसो भेख यह,
जाहीं पेख तेज रबिहूँ को मन्द ह्वै गयो।"

अर्थ—चन्द्रावली सखियों से कहती है हे सखी! कृष्ण के इस सुन्दर वेश को अनिमेष होकर देखो। इसे देखकर सूर्य का तेज मन्द पड़ गया है। इस कृष्ण रूपी चन्द्रमा के उदय होते ही हृदय की सारी जलन दूर हो जाती है। यह आनन्द को बढ़ाता है और बहुत ही सुन्दर लगता है। इसको देखकर मन तृप्त हो जाता है। तारा-मण्डल रूपी ग्वाल बालों के बीच में चंद्रमा रूपी कृष्ण ने वंशी बजाकर अमृत की वर्षा की है और इसने मान रूपी कमल को लज्जित कर दिया है अर्थात् इसने मानिनियों के मान को तोड़ दिया है। गायों के चलने से जो धूल उठती है, उससे बादल-सा छा गया है। उसे भेद कर ग्वाल-कुल को आनन्द देने वाले कृष्ण-चंद का उदय हुआ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

"केहि पाप सों..........भयो।"

अर्थ—चन्द्रावली कृष्ण के वियोग में विह्वल हो रही है। वह अपनी सखी बनदेवी से कहती है कि मैंने ऐसे कौन से भारी पाप किये हैं, जिससे ये पापी प्राण मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं और मेरे शरीर में अटके हुए हैं। यह समझ में नहीं आता कि विधाता ने मेरे साथ क्यों ऐसा हठ और अत्याचार किया है। हाय! अब आज की रात्रि भी व्यतीत हो गई, परन्तु प्यारे के बिना मेरे प्राण चले नहीं गये। मुझे प्राणों के रुके रहने पर आश्चर्य है। मेरी हतभागिनी आँखों को प्रतिदिन के दुःख देखने के लिये सवेरा हो गया।

विशेष—विप्रलंभ शृंगार की पूर्ण निष्पत्ति है। 'प्रलाप' और 'उन्माद' की विरहावस्था है।

[छन्द पृष्ठ ६६]

"आओ मेरे झूठन के सिरताज।"

अर्थ—चन्द्रावली कृष्ण को झूठों का सिरताज कहती हुई प्रेम-व्यंग्य करती

आओ मेरे झूठन के सिरताज।
छल के रूप, कपट की मूरत, मिथ्यावाद जहाज ॥
क्यों परतिज्ञा करी, रह्यो जो ऐसे उलटो काज।
पहले तो अपनाइ न आवत तजिबे में अब लाज ॥

चलो दूर हटो, बड़े झूठे हो।

आओ मेरे मोहन प्यारे झूठे।
अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हम सों रूठे ॥
मति परसौ तन रंगे और के रंग अधर तुम जूठे।
ताहू पै तनिकौ नहीं लाजत निरलज कहो अनूठे ॥

पर प्यारे,बताओ तो तुम्हारे बिना रात क्यों इतनी बढ़ जाती है ?

काम कछू नहिं यासों हमैं;
सुख सों जहाँ चाहिए रैन बिताइए।
पै जो करैं बिनती 'हरिचन्द जू',
उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए ॥
एक मतो उन सों क्यों कियो तुम,
सोऊ न आवै जो आप न आइए।
रूसिबे सों पिय प्यारे तिहारे,
दिवाकर रूसत है क्यों बताइए ॥

जाओ-जाओ मैं नहीं बोलती। (एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाती है)

तीनों : भई यह तो बावरी सी डोलै, चलौ हम सब वृक्ष की छाया में बैठें। (किनारे एक पास ही तीन बैठ जाती हैं)

चन्द्रावली : घबड़ाई हुई आती है। चंचल, केश इत्यादि खुल जाते हैं। कहाँ गया ? कहाँ गया ? बोल ! उलटा रूसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने ? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो, आओ प्रकट हो, मुँह दिखाओ, भई, बहुत भई, गुदगुदाना वहाँ तक जहाँ तक रुलाई न आवे : (कुछ सोच कर) हा ! भगवान किसी को किसी की कनौड़ी न करे, देखो मुझको इसकी कैसी बातें

है कि वास्तव में तुम छल--कपट की मूर्ति हो और झूठे सिद्धान्त के जहाज हो। यदि इस प्रकार विपरीत कार्य करना था, तो तुमने प्रतिज्ञा क्यों की थी ? पहले तो तुमने अपनाया, अब त्यागने में तुम्हें लज्जा नहीं आती।

"आओ मेरे ....अनूठे।"

अर्थ—हे मेरे झूठे मोहन प्यारे ! आओ। तुम ऐसे कपटी हो कि स्वयं अपनी प्रतिज्ञा को उलट दिया है। उल्टे हमीं पर रूठ रहे हो। तुम मेरा स्पर्श मत करो। तुम किसी अन्य के प्रेम से रंगे हुए हो, और तुम्हारे अधर जूठे हैं। तुम वास्तव में बड़े अनूठे निलज्ज हो, क्योंकि इतना करने पर भी तुमको लाज नहीं आती।

विशेष—यहाँ चन्द्रावली के कथन में खण्डिता नायिका का कथन है।

"काम कुछ..............बताइये।"

अर्थ—चन्द्रावली कृष्ण को प्रणय-उपालम्भ देती हुई कहती है कि मुझे तो इससे अब कुछ काम ही नहीं रहा है। आप जहाँ चाहें, आनन्द के साथ रात्रि व्यतीत करें। परन्तु मैं आपसे एक विनय करती हूँ। कृपा करके इस बात का तो उत्तर दीजिये कि आपने सूर्य से एकमत क्यों कर लिया है। क्योंकि जब आप नहीं आते, तो वह भी उदय नहीं होता और जब आप रूठ जाते हैं, तब वह भी रूठ जाता है।

विशेष—कृष्ण के बिना चन्द्रावली के लिए सारा संसार अंधकारमय है। वियोगिनियों को रीति बहुत दुःख देती है।

[छन्द पृष्ठ ६८]

"अरे पौन..............हमारो।"

अर्थ—चन्द्रावली विरहाधिक्य में उन्माद की अवस्था को पहुँच जाती है। वह पवन, वृक्ष-बेलों और वन के पशुपक्षियों से प्यारे कृष्ण का पता पूछती हुई फिरती है। हे पवन! तुम असीम आनन्द को देने वाली हो। तुम्हारी प्रत्येक स्थान में अबाध गति है। तुम राधिका-रमण श्रीकृष्ण से जाकर मेरी विरह जनित दयनीय दशा का वर्णन क्यों नहीं करते और उनसे क्यों नहीं

सहनी पड़ती हैं, आप ही नहीं भी आता उल्टा आप ही रूठता है;
पर क्या करूँ अब तो फँस गई, अच्छा यों ही सही।

[अहो अहो वन के रूख इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है]

हाय ! कोई नहीं बतलाता । अरे, नित के साथियों ।
कुछ तो सहाय करो ।

अरे पौन सुख-मौन सबै थल गौन तुम्हारो ।
क्यों न कहौ राधिका-रौन सों मौन निवारो ॥
अहे भँवर तुम श्याम रंग मोहन-व्रत-धारो ।
क्यों न कहौ वा निठुर स्याम सों दशा हमारी ॥
अहे हंस तुम राजबंस सरवर की सोभा ।
क्यो न कहो मेरे मानस सों दुख के गोभा ॥
हे सारस तुम नीके बिछुरन वेदन जानौ ।
तौ क्यों पीतम सों नहिं मेरी दशा बखानौ ॥
हे कोकिल-कुल श्याम रंग के तुम अनुरागी ।
क्यों नहिं बोलत तहीं जाय जहँ हरि बड़भागी ॥
हे पपीहा तुम पिउ पिउ पिय पिय रटत सदाई ।
आजहु क्यों नहिं रटि रटि के पिय लेहु बुलाई ॥
अहे भानु तुम तो घर में निरिन प्रकासो ।
क्यों नहिं पियहिं मिलाइ हमारो दुख-तम नासो ॥

हाय !

कोऊ नहिं उत्तर देते भये सबही निरमोही ।
प्रान पियारे अब बोलौ कहाँ खोजौं तोही ॥

[चन्द्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं]

(स्मरण करके) हाय ! मैं ऐसी भूली हुई थी कि रात को दिन बतलाती थी । अरे मैं किस को ढूँढती थी, हा ! मेरी इस मूर्खता पर उन तीनों सखियों ने क्या कहा होगा ! अरे यह तो चन्द्रमा था जो बदली की ओट में छिप गया । हा ! यह हत्यारिन वर्षा ऋतु है, मैं सो भूल ही गई थी । इस अँधेरे में मार्ग तो

मौन व्रत छोड़ने को कहते हो। हे भ्रमर! तुम श्याम के रंग में रंगे हुए हो और तुम मोहन के व्रत के व्रती हो। तुम निष्ठुर श्याम तक मेरा सन्देशा क्यों नहीं पहुँचा देते ?

"अरे हंस………………बड़भागी।"

अर्थ—हे हंस! तुम राजवंश के हो और सरोवर की शोभा हो। तुम मेरे हृदय के दारुण दुःख को कृष्ण से क्यों नहीं जाकर कहते। हे सारस! तुम विरहियों के दुःख को भली-भाँति जानते हो। तुम श्रीकृष्ण के पास जाकर मेरी दारुण वियोग-दशा का वर्णन क्यों नहीं करते ? हे कोकिल! तुम तो श्याम रंग के हो और तुमको श्याम रंग प्रिय है। तुम श्याम के पास जाकर मेरी विरह दशा क्यों नहीं सुनाते ?

"हे पपीहा………………नासो।"

अर्थ—हे चातक! तुम सदा पिउ-पिउ रटा करते हो। फिर आज पिउ-पिउ रटकर प्यारे कृष्ण को बुला क्यों नहीं लेते ? हे सूर्य! तुम तो प्रत्येक घर को अपनी किरणों से प्रकाशित करते हो। फिर तुम प्यारे कृष्ण से मिल कर मेरे दुःख रूपी अधकार को क्यों नहीं नष्ट करते ?

"कोउ नहिं………………तोही।"

अर्थ—चन्द्रावली लता, वृक्षों और पक्षियों से प्यारे कृष्ण का पता पूछकर निराश हो जाती है और कहती है कि हाय! सभी लोग निर्मोही हो गये हैं। कोई भी मुझे उत्तर नहीं देता है। प्राण-प्यारे! बतलाओ, अब तुम्हें कहाँ खोजूँ ?

विशेष—१. यहाँ विप्रलंभ शृंगार का सम्यक् निरूपण हुआ है।

२. चन्द्रावली आश्रय, कृष्ण आलम्बन, वन उद्दीपन और चन्द्रावली के कथन अनुभाव हैं।

३. विरह उन्माद और प्रलाप की अवस्था को पहुँच गया है।

४. राम भी सीता-हरण पर इसी प्रकार विलाप करते हुए देखे जाते हैं—

दिखाता ही नहीं, चलूँगी कहाँ और घर कैसे पहुँचूँगी ? प्यारे ! देखो, जो-जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गये। हा ! जो वन आँखों से देखने में कैसा भला दिखता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो सब कुछ है, एक तुम्हीं नहीं हो। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे ! छोड़ के कहाँ चले गये ? नाथ ! आँखें बहुत प्यासी हो रही हैं। इनको रूप-सुधा कब पिलाओगे ? प्यारे ! बेनी की लट बँध गई है, इन्हें कब सुलझाओगे ? (रोती है) नाथ ! इन आँसुओं को तुम्हारे बिना और पोंछने वाला भी नहीं है। हा ! यह गत तो अनाथ की भी नहीं होती। अरे विधिना ! मुझे कौन सा सुख दिया था जिसके बदले इतना दुःख देता है, सुख का तो मैं नाम सुन के चौंक उठती थी और धीरज धर के कहती थी कि कभी तो दिन फिरेंगे सो अच्छे दिन फिरे ! प्यारे ! बस बहुत भई, अब नहीं सही जाती, मिलना हो तो जीते जी मिल जाओ ! हाय ! जी भर आँखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता, मिलना दूर रहे, मैं तो मुँह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले न लगाया, जब सपने में देखा तभी घबड़ा कर चौंक उठी। हाय ! इन घरवालों और बाहर वालों के पीछे कभी उनसे रो रोकर अपनी बिपत भी न सुनाई कि जी भर जाता। लो घरवालो और बाहर वालो। ब्रज को सम्हालो मैं अब यहीं............(कंठ गद्‌गद् होकर रोने लगती) हाय रे निठुर ! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे ! इन बादलों की ओर देख के तो मिलता। इस ऋतु में तो परदेशी भी अपने घर आ जाते हैं पर तू न मिला। हा ! मैं इसी दुख को देखने को जीती हूँ कि वर्षा आवे और तुम न आओ ! हाय ! फिर वर्षा आई, फिर पत्ते हरे हुए, फिर कोइल बोली, पर प्यारे तुम न मिले, हाय ! सब सखियाँ हिंडोले झूलती होंगी, पर मैं किसके संग झूलूँ, क्यों हिंडोला झुलाने वाले मिलेंगे, पर आप भींज कर मुझे

हे खग-मृग हे मधुकर स्रेनी ।
तुम देखी सीता मृग नयनी ।।

५. प्रकृति को उद्दीपन रूप में उपस्थित किया गया है ।

७. "हे सारस.................जानों।" सारस की जोड़ी परस्पर से बिछुड़ कर जीवित नहीं रहती ।

"सारस जोड़ी क्यों जिये
मारि बिग्राधा लीन्ह"

'चन्द्रावली नाटिका' का दूसरा अंक नाटककार के उद्देश्य और काव्य-कला की दृष्टि से बहुत ही उत्कृष्ट है । भगवान को भक्तों का विरह प्यारा है । भक्त जब भगवान के विरह में तड़पता हुआ उन्माद एवं प्रलाप की अवस्था को पहुँच जाता है, तभी भगवान् स्वयं खिचे हुए आते हैं और भक्त को अपने अनुग्रह से अंगीकार करते हैं ।

चन्द्रावली केले के वन में है । उसका हृदय वियोग-व्यथा से उद्वेलित हो रहा है । प्रारम्भ में चन्द्रावली के स्वागत में पुष्टिमार्गीय वैष्णवीय भक्ति सिद्धान्त की पुष्टि होती है—

"वाह प्यारे वाह ! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण है, और निश्चय बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता, जाने कैसे ? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं । जिसने जो समझा है, उसने वैसा ही मान रखा है । हा ! वह तुम्हारा प्रेम जो अखण्ड परमानन्दमय प्रेम है और जो ज्ञान, वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शान्ति देने वाला है, उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता । सब अपने ही सुख और अभिमान में भूले हुए हैं । कोई किसी स्त्री से या पुरुष से उसको सुन्दर देखकर चित्त लगाना और उससे मिलने के अनेक यत्न करना, इसी को प्रेम कहते हैं और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी-चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं—पर प्यारे ! तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है, जिके तुम आप देते हो ।"

कृष्ण के इसी अनुग्रहमय प्रेम को पाने के लिए चन्द्रावली विह्वल है । वियोग-व्यथा में सन्तप्त होकर वह प्रलाप और उन्माद की अवस्था को पहुँच

बचाने वाला और प्यारी कहने वाला कौन मिलेगा ? (रोती है) हा ! मैं बड़ी निर्लज्ज हूँ। अरे प्रेम मैंने प्रेमिका बन कर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूँ। इन प्रानों को अब न जाने कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते। अरे ! कोई देखो, मेरी छाती बज्र की तो नहीं है कि अब तक.........(इतना कहते ही मूर्छा खाकर ज्यों ही गिरा चाहती है उसी समय तीनों सखियाँ आकर सम्हालती हैं)

[जवनिका गिरती है]

।। प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त ।।

जाती है। उसे जड़-चेतन का भी ध्यान नहीं रहता। वह लता, वृक्षों और पक्षियों से प्राण-प्रियतम कृष्ण का पता पूछती फिरती है—

अहो कदम्ब अहो अम्ब-निम्ब,
अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यो कहुँ,
मन-मोहन सुन्दर नंदलाला॥"

परन्तु इनसे उत्तर कहाँ मिलने का ? अतः वह निराश होकर कहती है—

"कोउ नहि उत्तर देत,
भये सबही निरमोही।
प्रानपियारे अब बोलौ,
कहाँ खोजौं तोही।"

चन्द्रावली कृष्ण को प्रेम-उपालम्भ भी देती है। अन्त में प्रेम-व्यथा के आधिक्य में मूर्छित होकर गिर पड़ती है।

काव्य-कला की दृष्टि से भी वह अंक उच्चकोटि का है। इसमें आये हुए गीत साहित्य एवं काव्य-माधुरी की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं।

———

दूसरे अंक के अन्तर्गत

अङ्कावतार

स्थान—बीथी, वृत्त

[सन्ध्यावली दौड़ी हुई आती है]

सन्ध्यावली : राम राम ! मैं तो दौरत दौरत हार गई, या ब्रज की गऊ का हैं साँड़ हैं, कैसी एक साथ पूँछ उठाय कै मेरे संग दौरी हैं, तापे वा निपूते सुबल हो बुरा होय और हूँ तुमड़ी बजाय कै मेरी ओर उन सबन को लहकाय दीनी। अरे जो मैं एक संग प्रान छोड़िकै न भाजती तो उनके रपट्टा मैं कबकी आय जाती। देखि आज या सुबल की कौन गति कराऊँ, बड़ो ढीठ भयो है, प्रानन की हाँसी कौन काम की। देखो तो आज सोमवार है, नन्द गाँव में हाट लगी होयगी, मैं वहीं जाती, इन सबने बीच ही आय धरी, मैं चन्द्रावली की पाती बाके यारै सौंप देती तो इतनो खुटकोऊ न रहतो। (घबड़ाकर) अरे माई, ये गौवें तो फेर इतै ही कूँअरराई (दौड़कर जाती है और चोली में से पत्र गिर पड़ता है)

[चंपकलता आती है]

चंपकलता : (पत्र गिरा हुआ देखकर) अरे ! यह चिट्ठी किस की पड़ी है ? किसी की हो; देखूं तो इसमें क्या लिखा है ? (उठा कर देखती है) राम राम ! न जाने किस दुखिया की लिखी है कि आँसुओं से भींजकर ऐसी चिपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने में फटी जाती है। (बड़ी कठिनाई से खोल कर पढ़ती है)

"प्यारे !

क्या लिखूं ! तुम बड़े दुष्ट हो, चलो भला सब अपनी वीरता हमीं

अकावतार

[पृष्ठ ७४]

अकावतार

नाटक के एक अङ्क के अन्त में आने वाले और दूसरे अंक की घटना की पात्रों द्वारा सूचना देने वाले दृश्य को अंकावतार कहते हैं। भारतेन्दु जी ने अंकावतार में चन्द्रावली के पत्र का रहस्य बड़े संकेतात्मक ढंग से उद्‌घाटित किया है। इसके द्वारा आगे की कथा विकसित होती है। सखियाँ चन्द्रावली से उसके प्रियतम को मिलाने के प्रयत्न में लगी दिखाई पड़ती हैं। चंपकलता को गिरा हुआ प्रणय-पत्र प्राप्त होता है, वह चन्द्रावली का सन्देश कृष्ण के पास पहुँचाने के प्रयत्न में लग जाती है।

अंकावतार का कथानक

चन्द्रावली ने अपनी सखी संध्यावली के द्वारा प्रणय-पत्र भेजा है। वनबीथी में ब्रज की गायों के भय से संध्यावली दौड़ती है। उसके हाथ से पत्र गिर जाता है। यह पत्र चंपकलता को मिलता है। उसके हृदय में चन्द्रावली के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। वह चन्द्रावली का प्रणय-पत्र और सन्देश कृष्ण तक पहुँचाने के प्रयास में लग जाती है। वह चन्द्रावली का पत्र खोलकर पढ़ती है। इससे चन्द्रावली की प्रेम-पीड़ा और करुण-अनुभूति का परिचय मिलता है।

भारतेन्दु जी ने यहाँ चन्द्रावली की प्रेम-साधना को कपोत-व्रत कहा है। इस एकान्तिक प्रेम में प्रिय की प्रणय-स्मृति और वियोग में हृदय निरन्तर छटपटाता रहता है।

शब्दार्थ और व्याख्या

बीथी = मार्ग । सांड़ = बैल । तापैं = उस पर ।। निपूते = पुत्र-हीन

पर दिखानी थी। हाँ भला मैंने तो लोक, वेद, अपना-विराना सब छोड़कर तुम्हें पाया, तुमने हमें छोड़ के क्या पाया ? और जो धर्म-उपदेश करो तो धर्म से फल होता है, फल से धर्म नहीं होता। निर्लज्ज ! लाज भी नहीं आती, मुँह ढको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो, चलो वाह ! अच्छी प्रीति निबाही, जो हो तुम जानते ही हो। हाय कभी न करूँगी। योंही सही, अन्त में मरना है, मैंने अपनी ओर से खबर दे दी, अब मेरा दोष नहीं बस।"

केवल तुम्हारी—

(लम्बी साँस लेकर) हा बुरा रोग है, न करे कि किसी के सिर बैठे बिठाए यह चक्र घहराय। इस चिट्ठी के देखने से कलेजा काँपा जाता है। बुरा ! तिसमें स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है, क्योंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोंट डालो मुँह से बात न निकले। प्रेम भी इसी का नाम है। राम-राम ! उस मुँह से जीभ खींच ली जाय जिससे हाय निकले। इस व्यथा को मैं जानती हूँ, और क्या जानेगा, क्योंकि "जाके पाँव न भई बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई"। यह तो हुआ, पर यह चिट्ठी है किसकी ? यह न जान पड़ी, (कुछ सोच कर) अहा जानी ! निश्चय यह चन्द्रावली ही की चिट्ठी है, क्योंकि अच्छर भी उसी के से हैं और इस पर चन्द्रावली का चिन्ह भी बनाया है। हा ! मेरी सखी बुरी फँसी, मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों से जान गई थी, पर इतना नहीं जानती थी। अहा ! गुप्त प्रीति भी विलच्छण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं। मनुष्य न इधर का होता है न उधर का। संसार के सुख छोड़ कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है। जो हो, यह पत्र तो मैं आप उन्हें जाकर दे आऊँगी और मिलने की भी विनती करूँगी।

यह ब्रज-प्रदेश की स्त्रियों की गाली है, वे झुँझलाहट में देती हैं। लहकाय-दीनी=हाँककर दौड़ा दिया । सुबल=एक गोप का नाम । रपट्टा=झपट्टा, चोट । कौन गति कराऊँ= दुर्दशा करना या पिटवाना । प्रानन की हँसी= ऐसी हँसी, जिससे प्राणों पर आ जाय । हाठ=बाजार । यारैं=प्रेमी को । खुटका=चिन्ता, आशंका । लोक-वेद अपना-विराना=पुष्टिमार्ग की रागानुगा भक्ति में लोक-वेद तथा अपने-पराये के सम्बन्ध तोड़ने का महत्व दिया गया है ।

धर्म से फल होता है और फल से धर्म नहीं होता= जिस प्रकार के धर्म का पालन किया जाता है, उसी प्रकार का फल होता है, ऐसा नहीं होता कि फल को देखकर धर्म का उपदेश दिया जाय । चन्द्रावली पत्र में कृष्ण के लिये लिखती है कि तुमने जैसा प्रेम-धर्म का उपदेश दिया, वैसा ही हमाने आचरण किया । अब तुम हमारा आचरण देखकर मर्यादा और धर्म का उपदेश दो, यह ठीक नहीं । मुँह ढको फिर भी बोले बिना डूबे जाते हो=मुँह ढककर न बोलने का उपक्रम करो, फिर भी तुम्हारा बोलने के लिये दिल व्याकुल रहता है । हम तो बोलना नहीं चाहते, तो भी तुम वोले बिना नहीं रहते । चक्र घहराय=मुसीबत आए । "उस मुँह......हाय निकले"=जीभ खींच लेने से मुँह से हाय नहीं निकल सकती, वास्तविक प्रेम में प्रेमी सारे कष्ट सहन करता है, उसके मुख से आह भी नहीं निकलती । जाकै पाँव न जाय बिवाई, सों क्या जाने पीर पराई=जिसके स्वयं पीड़ा न हुई, वह परपीड़ा का दुःख क्या जाने । इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं है=अलौकिक मूक प्रेम में लौकिक प्रेम की रीति काम नहीं आती, अर्थात् लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम से भिन्न होता है । बूढ़ी फूस-सी डोकरी=ऐसी डोकरी जिसके अंग बिलकुल शिथिल हो गये हैं। अर्थात् जिसका अस्थि-पंजर मात्र रह गया हो । "बात फोरि कै उलटी आग लगावै"=भेद खोलकर काम बिगाड़े या चुगली खाय ।

विशेष—इस अंकावतार में चन्द्रावली के गुप्त पत्र भेजने के रहस्य का उद्‌घाटन होता है । चन्द्रावली पत्र की समाप्ति पर नाम के स्थान अर्धचन्द्र का चिन्ह बना देती है जो उसके नाम को संकेत करता है ।

(नेपथ्य में बूढ़ों के-से सुर से)

हाँ तू सब करेगी ।

चंपकलत : (सुन कर और सोच कर) अरे यह कौन है (देखकर) न जा कोऊ बूढ़ी फूस-सी डोकरी है । ऐसो न होय के बात फोड़ि उलटी आग लगावै, अब तो पहिलै याहि समझावनो परयो चलूं । (जाती है) ।

॥ इति द्वितीय अकं के अन्तर्गत भेदप्रकाशननामकाऽङ्कावतारः ॥

एक ओर चंपकलता चन्द्रावली का यह पत्र उसके प्रेमी के पास पहुँचाने का प्रयास करती है और दूसरी ओर नेपथ्य में कोई वृद्ध स्वर कार्य को सिद्ध होने की कामना करता है। वृद्धा की कामना आकाशभाषित के रूप में है।

तीसरा अंक

स्थान—तालाब के पास एक बगीचा

[समय—तीसरा पहर, गहिरे बादल छाए हुए हैं, झूला पड़ा है,
कुछ सखी झूलती, कुछ इधर-उधर फिरती हैं ।]

[चन्द्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी इत्यादि एक
स्थान पर बैठी हैं, चन्द्रकान्ता, वल्लभा, श्यामला,
भामा झूले पर हैं, कामिनी और माधुरी
हाथ में हाथ दिये घूमती हैं ।]

कामिनी : सखी ! देख बरसात भी अबकी किस धूमधाम से आई है, मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजदाई है । धूम से चारों ओर से घूम-घूम कर बादल पर के पर जमाये, बंग-पंगति का निशान उड़ाये, लपलपाती नंगी तलवार-सी बिजली चमकाते, गरज-गरज कर डराते, बान के समान पानी वरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा-सा कुछ अलग पुकार-पुकार गा रहे हैं । कुल की मर्यादा ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है । मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग-अंग में भरी है उसके निकले बिना जी तिलमिलाता है । ऐसे बादलों को देखकर कौन लाज की चादर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है ?

माधुरी : विशेष कर वह जो आप कामिनी हो । (हँसती है)

कामिनी : चल, तुझे हंसने ही की पड़ी है । देख, भूमि चारों ओर हरी-हरी हो रही है । नदी-नाले, बावली-तालाब सब भर गये । पच्छी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं । बीरबहूटी और जुगनूं पारी-पारी रात और दिन को इधर-उधर

तीसरा अंक

कथा वस्तु

तीसरे अंक में वाटिका का दृश्य है। चन्द्रावली के साथ कई सखियाँ आती हैं। उनके परस्पर के वार्तालाप के द्वारा चन्द्रावली और श्री कृष्ण के मिलन का उपाय निश्चित होता है। चन्द्रावली का मार्मिक विरह उन्माद की अवस्था को पहुँच जाता है। वर्षा काल की संध्या है। कुछ सखियाँ झूला झूल रही हैं और कुछ उनको झुला रही हैं। चन्द्रावली, माधवी, काम-मंजरी, विलासिनी आदि एक स्थान पर बैठी हुई हैं। चन्द्रकान्ता, वल्लभा, श्यामला और भामा झूले पर हैं। कामिनी और माधुरी हाथ में हाथ डाले घूम रही हैं। वर्षा-ऋतु विरहियों के लिये छोटा-मोटा प्रलयकाल बन गई है।

कामिनी और माधुरी के कथोपकथन में वर्षा का चित्रण उद्दीपन के रूप में हुआ है और वियोग को उद्दीप्त करने वाला है। वर्षा की सुहावनी प्रकृति चन्द्रावली को मुग्ध करती है। यहाँ बाह्य प्रकृति का चित्रण बड़ा ही भाव-पूर्ण हुआ है, परन्तु अन्तः प्रकृति का चित्रण उतना अधिक सजीव नहीं है।

कामिनी और माधुरी के कथोपकथन में चन्द्रावली की दयनीय दशा का परिचय मिलता है। कामिनी और माधुरी के वार्तालाप में मृदु परिहास की व्यंजना हो जाती है। कामिनी में कामशक्ति की भावना अधिक है। उस पर वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है। कामिनी हास-परिहास तथा वर्षा-ऋतु का वर्णन करती हुई वृक्षों की ओट में हो जाती है। माधवी चन्द्रावली से श्यामला का दर्शन करने को कहती है। काममंजरी वर्षा-बहार में झूले के दृश्य का वर्णन करती है। यहाँ वर्षा-ऋतु के अन्तर्गत झूले का बड़ा सजीव वर्णन हुआ है, जो चन्द्रावली के वियोग को उदीप्त कर देता है।

बहुत दिखाई पड़ते हैं। नदियों के करारे धमाधम टूट कर गिरते हैं। सर्प निकल-निकल अशरण-से इधर-उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे हैं। परदेशी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े-पड़े पछता रहे हैं। आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो मानों छोटा प्रलय-काल ही आया है।

माधुरी : छोटा क्यों, बड़ा प्रलय-काल आया है। पानी चारों ओर से उमड़ ही रहा है। लाज के बड़े-बड़े जहाज गारद हो चुके हैं, भला फिर वियोगियों के हिसाब तो संसार डूबा ही है तो प्रलय ही ठहरा।

कामिनी : पर तुझको तो बेटे कृष्ण का अवलम्ब है न? फिर तुझे क्या, भाँडीर वट के पास उस दिन खड़ी बात कर ही रही थी गए हम—

माधुरी : और चन्द्रावली?

कामिनी : हाँ, चन्द्रावली विचारी तो आप हो गई बीती है। उसमें भी अब तो पहरे में है, नजरबन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या—

माधुरी : जाने दे नित्य का झंखना। देख फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृक्षों से लपटी लताएँ फिर से लरजने लगीं। साड़ियों के आँचल और दामन फिर से उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया। देख, यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी।

कामिनी : सखी! वसन्त का ठंडा पवन और शरद की चाँदनी से राम-राम कर के वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली-काली घटा और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न बचेगा।

माधुरी : तिस में तू तो कामिनी ठहरी, तू बचना क्या जाने।

कामिनी : चल ठठोलिन। तेरी आँखों में अभी तक उसी दिन की खुमारी भरी है, इसी से किसी को कुछ नहीं समझती। तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े।

चन्द्रावली स्वगत-प्रलाप करती है, यह बहुत ही लम्बा और असंगत हो गया है। वह कृष्ण को झूठे, निर्दय, निर्लज्ज आदि तक कह जाती है। वह आत्मघात करना चाहती है, परन्तु सखियाँ उसे रोकती हैं और उसकी व्यथा मिटाने के लिए सामूहिक योजना बनाती हैं। माधवी ज्येष्ठा नायिका राधा को समझाने का भार लेती है और विलासिनी चन्द्रावली के घर वालों को समझाने का काम लेती है और काममंजरी कृष्ण को अनुकूल बनाने का उत्तरदायित्व सम्हालती है।

सभी सखियाँ चन्द्रावली से हिंडोला झूलने का आग्रह करती हैं, परन्तु वह नहीं झूलती। वह सदैव ही विरह के हिंडोले पर झूला करती है। उमड़ी हुई काली घटा देखकर चन्द्रावली को कृष्ण की स्मृति आ जाती है और हृदय में विरह रूपी घटा उमड़ने वाली है। चन्द्रावली विरह से दारुण दुःख का अनुभव करती है। माधवी तथा काममंजरी उसे वहाँ से ले जाती हैं। यहाँ 'वर्षा-वियोग-विपत्ति' नामक द्वितीय अंक समाप्त होता है।

[पृष्ठ ८२-८२]

मानों कामदेव····भिजवाई है=वियोगिनियों के वियोग को वर्षा उद्दीप्त कर देती है; यहाँ वर्षा ऐसी लगती है, मानों कामदेव ने अबलाओं को जीतने के लिये सेना भेजी हो। परे के परे=तह को तह। बग पंगति=बगुलों की पंक्तियाँ। निशान=ध्वजा, पताका। करखा=एक विशेष गीत जो युद्ध के समय गाया जाता है। यहाँ कामदेव की सेना ने आक्रमण कर दिया है। अतः युद्ध ही है। निगोड़ों=दुष्टों। "कुल की मरजादा····चढ़ाई है" कामदेव ने वर्षा के रूप में जो आक्रमण किया है, उससे ललनाओं का कुल, शील और मर्यादा नष्ट हो गई है। "मनोरथों से कलेजा उमँगा आता है"=हृदय अभिलाषाओं से पूर्ण है। कौन लाज रख सकती है=ऐसी कौन है, जो अपने शील-संकोच की रक्षा कर सकती है।

सखी देख बरसात···पाल सकती हैं=यहाँ रीतिकालीन शृङ्गारिक अभि-व्यक्ति हुई है। चन्द्रावली के विरह-वर्णन में रीतिकालीन परम्परा का स्पष्ट प्रभाव है।

माधुरी : बीती है मेरे सिर। मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूँ।

कामिनी : चल, तू हुई है क्या कि न उबल पड़ेगी। स्त्री की बिसात ही कितनी। बड़े-बड़े योगियों के ध्यान इस बरसात से छूट जाते हैं। कोई योगी होने ही पर मन ही मन पछताते हैं, कोई जटा पटक कर हाय-हाय चिल्लाते हैं और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़-तोड़ कर योगी से भोगी हो ही जाते हैं।

माधुरी : तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुँकवाकर तूमड़ी तोड़वा ले।

कामिनी : चल! तू क्या जाने इस पीर को। सखी! यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किये देते हैं। तुझे प्रेम हो तब सूझे! इस आनन्द की धुनि में संसार ही दूसरा, एक विचित्र शोभा वाला और सहज काम जगाने वाला मालूम पड़ता है।

माधुरी : कामिनी पर काम का दावा है इसी से हेर-फेर उसी को बहुत छेड़ा करता है।

[नेपथ्य में बारम्बार मोर कूकते हैं]

कामिनी : हाय हाय! इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विष-पान ही है। इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोर कर चलना, ये दो बातें बड़ी कठिन हैं। धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग-रंग के कपड़े पहिने, ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़ी पीतम के सग घटा और हरियाली देखती हैं या बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती है। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौगुना रंग बढ़ाते हैं। झूलते हैं झुलाते हैं, हँसते हैं हँसाते हैं, भीगते हैं, भिगाते हैं, गाते हैं गवाते हैं और गले लगते हैं, लगाते हैं।

माधुरी : और तेरो न कोई पानी बचाने वाला, न तुझे कोई निचोड़ने वाला, फिर चौगुने की कौन कहै ड्योढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़ेगा ही नहीं।

कामिनी=कामवती स्त्री। पर समेटे=पंख समेटे हुए। सकपके=चकित। वीर बहूटी=लाल रंग का एक कीड़ा जो वर्षा के दिनों में पृथ्वी पर रेंगता हुआ दिखाई देता है, इसको राम की बुढ़िया भी कहते हैं। पारीपारी=पर्त के पर्त। करारे=नदियों के किनारे की वह भाग जो नदी के कटाव के कारण बनता है। लाज के···हो चुके=वर्षा के कारण 'रति' भाव उद्दीप्त हो उठा है, जिसमें बड़ी-बड़ी लज्जा वाली स्त्रियाँ भी लाज खो चुकी हैं। प्रलय ही ठहरा=वर्षा काल में वियोगिनियों के लिए दुःख ही दुःख है—अतः प्रलयकाल ही समझना चाहिए। भाँडीर=ब्रज-मण्डल के ८४ वनों में एक वन। गारद=नष्ट।

[पृष्ठ ८२-८४]

बटे कृष्ण=वट वृक्ष वाले कृष्ण। अवलंब=सहारा। झंखना=रोना-धोना। पुरवैया=पूर्व से आने वाली हवा जो अपने साथ बादल लाती है। लरजने लगी=काँपने लगी। सरद=शरद ऋतु (क्वार और कार्तिक के महीने)। झकोरने लगी=चलने लगी, झोंके मारने लगी। दामन=छोर। एकतार=लगातार। धमाका=पानी बरसने के कारण होने वाली ध्वनि। ठठोलिन=हंसी करने वाली। खुमारी=नशा। बिसात=शक्ति, हैसियत। पीर=व्यथा।

हेरफेर=घुमा फिरा कर। छेड़ा करता है=तंग करता है। कुलाहल=कोलाहल, शोर। दई मारे=पापी, यहाँ मोरों से अभिप्राय है। चूनरी=बुन्दीदार रंगीन ओढ़नी। सगबगी=भीगी हुई। रंग बरस रहा है=आनन्द का वातावरण है। समा=वातावरण। गाती=गले में लपेट कर बाँधा जाने वाला वस्त्र। लाँग=काँछ धोती के नीचे वाले भाग को पुरुषों की भाँति कमर में खुरस लेना। पेंग मारना=झोंटे लेना। जमीन में पैर मार कर झूले को गति प्रदान करने का एक ढंग विशेष।

हूलति=दुखदायी है। विरह सूल=विरह का काँटा। घनघोरे पैं=बादल के गम्भीर शब्द पर। ऊनरी=उमड़ती हुई। कजरारे=काजल वाले। दूनरी लगी है=दुगनी शोभा पा रही है।

रुत=ऋतु। दुरगत=बुरा हाल। अखत्यार=वश। छोटी-स्वामिनी=

कामिनी : चल लुच्चिन। जाके पायँ न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई।

[बात करती-करती पेड़ की आड़ में चली जाती है]

माधवी : (चन्द्रावली से) सखी! श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है। मुखचन्द्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटें सगबगी होकर गले में लपट रही हैं। कपड़े अंग में लपट गये हैं। भींगने से मुख का पान और काजल सबकी एक विचित्र सोभा हो गई हैं।

चन्द्रावली : क्यों न हो। हमारे प्यारे की प्यारी है। मैं पास होती तो दोनों हाथो से इसकी बलैया लेती और छाती से लगाती।

काममंजरी : सखी, सचमुच आज तो इस कदम्ब के नीचे रंग बरस रहा है। जैसा समा बँधा है वैसी ही झूनने वाली हैं। झूलने में रंग-रंग की साड़ी की अर्द्ध चन्द्राकार रेखा इन्द्रधनुष की छवि दिखती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठंडी-ठंडी हवा खा रही है, कोई गाँती बाँधे लाँग कसे पेंग मारती है। कोई गाती है कोई डरकर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगंद देती है, पर दूसरी उसको चिढ़ाने को झूला और भी झोंके से झुला देती है।

माधवी : हिंडोरा ही नहीं झूनता। हृदय में पीतम को झुलाने के मनोरथ और नैन में पिया की मूर्त्ति भी झूल रही है। सखी! आज साँवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है। देख, बिजुली की चमक में उसकी मुख-छवि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार-बार घूंघट उलट देता है। देख—

हूलति हिये में प्रान प्यारे के बिरह सूल
फूलति उमंग-भरी झूलति हिंडोरे पैं।
गावति रिझावति हंसावति सबन 'हरि-
चन्द्र' चाव चौगुनों बढ़ाई घन घोरे पै।

चन्द्रावली की ओर संकेत है। लाठी मारवे सौं..........होयगो=लाठी मारने से जल-राशि को पृथक भागों में नहीं किया जा सकता है उसी प्रकार राधा और चन्द्रावली की अभिन्नता है। उन दोनों में कभी भेद नहीं पड़ सकता है। जुदा=पृथक। ढिमका=फलानी, अमुक। हुम्बै वीर=हाँ सखी। बिगोरे=बिगाड़ें।

रात छोटी है और स्वाँग बहुत हैं=समय थोड़ा है और करना बहुत है। आशा नहीं कि सभी इच्छायें इस छोटे से जीवन-काल में पूरी हो सके। स्वाँग कहते हैं तमाशा, रास इत्यादि को।

[पृष्ठ ८८, ९०, ९२]

सुजान=सज्जन अथवा ज्ञानी। बकरा.........मिला=लोकोक्ति है—प्राण तक दे दिए परन्तु कोई कृतज्ञता प्रकट नहीं की गई। बधिक=शिकारी। अंक=गोदी। गुन=गुण, अच्छाई। हवस=लालसा। शंका द्वार खोल रखा है=संदेह के लिए स्थान बनाए हुए हो। चन्द्रावली कहती है कि लोगों ने मुझे कलंकित कर रखा है, अतःग्रहण करके उन लोगों का मुँह बन्द करो। कनौड़=कृपा की भावना, कृतज्ञ। आँखों में हलकी हो गई=सब लोग मेरा अपमान करने लगे। भामिनी=स्त्री। भौंड़ी=भद्दी, बुरी। मानिनी=मान करने वाली स्त्री। छोड़ी=छोकरी, यों ही बहला दी जाने वाली लड़की। कनौड़ी करी कुल तें=कुल की मर्यादा खोती। कौड़ी करी हीरा तें=हीरा के समान अमूल्य अपने जीवन को कौड़ी के समान तुच्छ बना दिया। मर्म वाक्य=ऐसे शब्द जिनको सुनकर तुम्हें दुःख हो, बुरे लगने वाले चुटीले वाक्य। निघृण—अपमान सूचक शब्द। बखेड़िए=बात का बतंगड़ करने वाले, व्यर्थ ही बात बढ़ाने वाले झगड़ालू=झगड़ा करने वाले। निर्दय हृदय कपाट=जो किसी को हृदय में स्थान देने में कठोर हो।

छाती ठोक कर=दृढ़ता पूर्वक। हाथ उठा कर=शरणागत की रक्षा करने की घोषणा करके। जहन्नुम=नरक। तुर्रा=आक्षेप। तुर्रा यह=ऊपर से बात यह। घृणा=दया। सब धान बाइस पसेरी=जहाँ अच्छे-बुरे ऊंच-नीच सब समान समझे जाते हैं। उपद्रव और जाल=सृष्टि रचकर यह

वारि वारि डारी प्रान हँसनि मुरनि बत-
रान मुँह पान कजरारे दृग डोरे पै।
ऊनरी घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा
कैसी काजु चुनरी फबी है मुख गोरे पै॥

चन्द्रावली : सखियों ! देखो कैसी अंधेर और गजब है कि या रुत मैं सब अपनों मनोरथ पूरो करैं और मेरी यह दुरगति होय ! भलो काहुवै तो दया आवती। (आँखों में आँसू भर लेती हैं।)

माधवी : सखी ! तू क्यों उदास होत है। हम सब कहा करैं, हम तो आज्ञा-कारिणी-दासी ठहरीं, हमारो का अखत्यार है ! तऊ हम में सों कोऊ कछू तोहि नायँ कहै।

काममंजरी : भलो सखी हम याही काहाँ कहैंगी ? याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी।

विलासनी : हाँ सखी ? हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं। सखी ! बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, ये दोउ फेर एक का एक हायँगी। लाठी मारबें सों पानी थोरों हू जुदा हो गयो, पर अभी जो सुन पावे कि ढिमकी सखी ने चन्द्रावलियै अकेलि छोड़ दीनी तो फेर देखो तमासा।

माधवी : हस्वै बीर। और फिर कामहू तौं हमीं सब बिगारैं। अब देखि कौन नै स्वामिनी सों चुगली खाई। हमारेई तुमारे में सों बहू है। सखी चन्द्रावलियै जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी।

चन्द्रावली : (आप ही आप) प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते ! फिर यह शरीर कहाँ और तुम कहाँ ? यह संयोग हमको तो अब की ही बना है, फिर यह बातैं दुर्लभ हो जायँगी ! हाय नाथ ! मैं अपने इन मनोरथों को किसे सुनाऊँ और अपनी उमगें कैसे निकालूँ ? प्यारे रात छोटी है और स्वाँग बहुत है। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय ! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात दिन रोते ही बीतते

बखेड़ा क्यों खड़ा किया और फिर प्रेम का जाल क्यों बनाया। विषमय संसार =अविद्या के कारण उत्पन्न दुःखों से भरा हुआ संसार।

बेहयाई=बेशर्मी, निर्लज्जता। परले सिरे की=हद दर्जे की, जिसका कोई ठीक नहीं।

इतने बड़े............पहले सिरे का=संसार रूपी इतना बड़ा कारखाना चलाते हो, परन्तु हद दर्जे का झूठ बोलते तुमको जरा भी शर्म नहीं मालूम होती है। नाम बिके=खूब नाम चला रहा है। भक्तों और प्रेमियों की बुरी गति हो रही है, तुम भक्त-वत्सल बने बैठे हो।

झूठा कहें=प्रतिज्ञा की थी कि "जब जब भीर परै भक्तन पै, तहँ-तहँ जाय छुड़ाऊँ" परन्तु अब सुध नहीं लेते, इसीसे झूठे कहलाते हो। अपने मारे मरें= अपने आप मरे जाते हैं, भक्तजनों को मार्ग ही नहीं मिल रहा है। शुद्ध बेह-याई=पूरी बेशर्मी ! लाज को जूतों मार के पीट-पीट करके निकाल दिया है= पूरे निर्लज्ज हो। जिन मुहल्ले...............नहीं जाती=लज्जा को हवा तक नहीं पाती है। इतने निर्लज्ज हो कि लज्जा की चर्चा करना भी व्यर्थ ही है। मतवाले........सिर फोड़ते=यदि एक बार भी आपने अपने दर्शन दे दिए होते तो विभिन्न धर्मावलम्बी तुम्हारे सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् बातें कहकर क्यों आपस में झगड़ते ? तब ऐसे हो तब ऐसे ही=इतने निंदनीय होते हुए भी इस प्रकार हमको मोहित कर लेते हो। कदाचित इतने निंदनीय न होते, तो न मालुम क्या गजब ढोते, हमारी क्या दशा करते ? हुकमी बेहया=बेशर्मी में कभी न चूकने वाले।

मूल उपद्रव तुम्हारा है—तुम्हीं इस दुःख भरी सृष्टि के कारण हो, अतः मेरे दुखों के कारण तुम्ही हो; इतना और कोई न कहेंगे=मैंने जिस प्रकार तुम्हारा गुण-गान किया है, अन्य कोई न कर सकेगा। शिफारशी नेति-नेति कहेंगे=शास्त्र और मर्यादा का पालन करने वाले अथवा तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाने वाले तुम्हारे स्वरूप का वर्णन ही न कर सकेंगे अथवा तुमको वर्णनातीत बताएँगे, परन्तु मैंने तुम्हारे वास्तविक गुणों का सच्चा वर्णन कर दिया, मैंने तो सच्ची कह दीं। दुखमय पचड़ा=दुःखों से भरा हुआ संसार।

हैं। कोई बात पूछने वाला नहीं, क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता, सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय ! मैं तो अपने पराये सबसे बुरी बनकर बेकाम हो गई। सब को छोड़कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की। हाय ! मैं किस की होके रहूँ, मैं किसका मुँह देख कर जिऊँ ? प्यारे, मेरे पीछे कोई ऐसा चाहने वाला न मिलेगा। प्यारे ! फिर दीया लेकर मुझको खोजोगे हा ! तुमने विश्वासघात किया। प्यारे, तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलेगी। हमारा तो कपोतव्रत है। हाय स्नेह लगाकर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो ! बकरा जान से गया, पर खाने वाले को स्वाद न मिला ! हाय ! यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह ! खूब निबाह किया ! बधिक भी बधकर सुधि लेता है, पर तुमने न सुधि ली। हाय ! एक बेर तो आकर अंक लगा जाओ ! प्यारे, जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता। हाय ! फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसेगा और कौन रोयेगा ? हाय ! संसार छोड़ा भी नहीं जाता। सब दुःख सहती हूँ, पर इसी में फँसी पड़ी हूँ। हाय नाथ ! चारों ओर से जकड़कर ऐसी बेकाम क्यों कर डाली है ? प्यारे, योंही रोते दिन बीतेंगे ? नाथ यह हवस मन की मन ही में रह जायगी ? प्यारे, प्रकट होकर संसार का मुँह क्यों नहीं बन्द करते और क्यों शंका-द्वार खुला रखते हो ? प्यारे, सब दीनदयालुता कहाँ गई ? प्यारे, जल्दी इस संसार से छुड़ाओ; अब सही नहीं जाती। प्यारे, जैसी हैं, तुम्हारी हैं। प्यारे, अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ। नाथ, जहाँ इतने गुन सीखे वहाँ प्रीति निबाहना क्यों न सीखा ? हाय ! मँझधार में डुबाकर ऊपर से उतराई माँगते हो प्यारे, सो भी दे चुकी, अब तो पार लगाओ। प्यारे, सब्र की हद होती है। हाय ! हम तड़पें और तुम तमाशा देखो। जग-कुटुम्ब से छुड़ाकर यों छितर-बितर करके बेकाम कर देना यह कौन बात है ? हाय ! सबकी आँखों में हलकी हो गई। जहाँ जाओ वहाँ दूर-दूर, उस

जंगल में मोर नाचा किसने देखा=मेरे हृदय में छिपे हुए प्रेम को कौन जानता है। वह सब देखता है=श्री कृष्ण परब्रह्म होने के कारण अन्तर्यामी हैं, वह सब कुछ जानते हैं। मेरे अपराधों.......अपनी ओर देखो=मेरे अवगुणों पर ध्यान मत दो, अपनी भक्त-वत्सलता का ख्याल करो। जीव भर्यौ आवे है=हृदय में करुणा का संचार होता है; दुख होता है। सौंह=शपथ, सौगंध। प्रियाजी=राधिका जी। रिस=गुस्सा, अप्रसन्नता। हा हा खाऊँ=बिनती करती हूँ। याको=इसके।

ताइ=तक। यापै=इसके ऊपर। भोरी=भोली, सीधी।

मनोरथ करै=इच्छा करती है, सोचती है। तब ताई=तब तक। जिम्मा=जिम्मेदारी, उत्तरदायित्व। मनाइबे=राजी करना।

प्रियाजी=राधिका जी। याके=इसके। घरकेन सों=घर वालों से। याकी सफाई करावै=इसकी निष्कलंकता सिद्ध करे। लाल जी=श्री कृष्ण। विन्ने=उन्हें। वेऊ=वे भी।

जब तक सांसा तब तक आसा=(लोकोक्ति है) अन्तिम काल तक आशा नहीं छोड़नी चाहिए—रोगी में जब तक श्वास रहती है, तब तक उसके अच्छे होकर उठ खड़े होने की उम्मीद बनी रहती है।

काहुबै=किसी को भी।

अनमनेपन=अनमनापन, चित्त की उदासी। मेरे तो नेत्र.......करते हैं =मेरे नेत्र रूपी हिंडोले में श्री कृष्ण जी हमेशा झूला झूलते हैं।

पल-पटुल्ली=पलक रूपी पटली (पीढ़ा)। चारु=श्रेष्ठ। डोर=डोरी, रस्सी—आशा के खम्बे हैं, जिनके ऊपरी डोरी टंग रही है। झुमका=झूमक नाम का राग। ललिता=सुन्दर। उछाह=उत्साह। मलार=मल्हार नाम का राग जो वर्षा के समय गाया जाता है। झोंटन=पैंग।

"पल..........झूल्योई करत है॥"

इस छन्द में सांग रूपक है। नेत्र रूपी हिंडोले में श्री कृष्ण के प्रति प्रेम रहता। इस झूले में पलक रूपी पटली है, आशा के खम्भे हैं तथा प्रेम की डोरी है, मेरे हृदय का उत्साह ही झूमक राग है तथा लोक में फैली हुई बदनामी

पर यह गति ! हाय ! "भामिनी तें भौंड़ी करी, मानिनी तो मौड़ी करी कौड़ी करी हीरा ते कनौड़ी करी कुल तें" । तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है । बस अब मैं गाली दूँगी । और क्या कहूँ, बस आप आप ही हो, देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्मवाक्य कहूँगी—झूठे, निर्दय, निर्घृण, निर्दय हृदय-कपाट, बखेड़िये और निर्लज्ज, ये सब तुम्हें सच्ची गालियाँ हैं । भला, जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यों झूठ बके ? किसने बकाया था ? कूद-कूद कर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी ? झूठे ! झूठे !! झूठे !!! झूठे नहीं वरंच विश्वासघातक ! क्यो इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा-उठा कर लोगों को विश्वास दिया ? आप सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्रा यह है कि किसी को चाहे कितना भी दुःखी देखें आप को कुछ घृणा तो होती ही नहीं । हाय ! हाय ! कैसे दुःखी लोग हैं—और मजा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी । चाहे आपके वास्ते दुःखी हो, चाहे अपने संसार के दुःख से, आपको दोनों उल्लू फँसे हैं । इसीसे तो "निर्दय हृदयकपाट" यह नाम है । भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था ? कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते, बस कौन था केवल आनन्द था, फिर क्यों यह विषमय संसार किया था बखेड़िये ! और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परले सिरे की । नाम बिके, लोग झूठा कहें, अपने मारे फिरें, आप भी अपने मुख झूठ बने, पर वाह रे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता ? बेशरम हो तो इतनी तो हो ! क्या कहना है ! लाज को जूतों मार के पीट के निकाल दिया है । जिस मुहल्ले में आप रहते हैं उस मुहल्लें में लाज की हवा भी नहीं जाती । जब ऐसे हो तब ऐसे हो । हाय ! एक बार भी मुँह दिखा दिया होता तो मतवाले मतवाले बने क्यों लड़ लड़ कर सिर फोड़ते ? अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे ! हुकमी बेहया हो, कितनो गाली दूँ, बड़े

झालर के समान शोभायमान है। मेरे आँसू वर्षा कालीन बूँदें हैं। प्रियतम के गुणों का कथन ही वर्षा के समय गाया जाने वाला मल्हार राग है, मिलने की लालसा ही पेंग है जिसके फलस्वरूप यह हिंडोला खूब जोर के साथ झोंटे लेता रहता है अथवा चलता रहता है। ऐसे नेत्र रूपी हिंडोले में श्री कृष्ण का विरह (प्रेम) सदैव झूलता रहता है।

गाहक हैं = प्राप्त करने की आशा करती है।

"देखि........फहरि-फहरि उठै।"

घनश्याम = काले बादल। घनश्याम = श्री कृष्ण। सुरति करि = याद करके। जिय मैं = हृदय में। घहरि-घहरि उठै = गरज-गरज उठती है।

बगमाल = बगुलों की पंक्ति। बनमाल = बन माला, जो तुलसी, कुँद, मंदार, पारिजात और कमल के फूलों से बनाई जाती है।

मोतीमाल = मोतियों की लर (माला)। लहरि लहरि उठै = लहर-सी उत्पन्न करती है। पिक = कोयल। बाँकी = अत्यन्त सुन्दर।

छहरि छहरि = चारों ओर छितरा कर। फहरि फहरि = हवा में उड़कर।

अर्थ—काले बादलों को देखकर श्रीकृष्ण की याद आ जाती है और हृदय में विरह रूपी धारा घुमड़ उठती है। इन्द्रधनुष और बगुलों की पंक्ति को देखने पर प्रीतम के वक्षस्थल पर पड़ी हुई बनमाला एवं मोतियों की माला की स्मृति हृदय में लहरा उठती है। हरिश्चन्द्र कहते हैं कि मोर और कोयल के शब्द उनकी वंशी की मधुर ध्वनि की याद दिला देते हैं और परिणामस्वरूप उनकी सुन्दर मुख की शोभा से हृदय भर जाता है। बिजली की चमक उनके हवा में उड़ते हुए पीताम्बर की याद मेरे हृदय को भर देती है।

विशेष—प्रथम पंक्ति—'घनश्याम-घनश्याम' में 'यमक' अलङ्कार है।

द्वितीय पंक्ति—'विरह-घटा' में 'रूपक' अलंकार है।

द्वितीय पंक्ति—'घटा घहरि-घहरि' में अनुप्रास अलङ्कार है।

भारी पूरे हो, शरमाश्रोगे थोड़े ही कि माथा खाली करना सुफल हो। जाने दो, हम भी तो वैसी ही निर्लज्ज झूठी हैं। क्यों न हों। 'जस दूल्हह तस बनी बराता'। पर इसमें भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना कोई न कहेगा, क्योंकि सिफारशी नेति-नेति कहेंगे, सच्ची थोड़े ही कहेंगे। पर यह तो कहो कि यह दुःखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहेगा कि कुछ तै भी होगा या न तै होय। हमको क्या ? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ। हाय ! मैं किससे कहती हूँ, कोई सुनने वाला है। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। नहीं नहीं, वह सब देखता है या देखता होता तो अब तक मेरी खबर न लेता। पत्थर होता तो भी पसीजता। नहीं नहीं। मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया। प्यारे, तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह मेरे कर्म का दोष है ना, मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूँ। प्यारे, क्षमा करो। मेरे अपराधों की ओर न देखो, अपनी ओर देखो। (रोती है)

माधवी : हाय सखियो। यह तो रोय रही है।

काममंजरी : सखी प्यारी। रोवै मती। सखी, तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै।

माधवी : सखी। मैं तेरे हाथ जोड़ूँ, मत रोवै। सखी ! हम सबन को जीव मर्‌यो आवै है।

विलासनी : सखी, जो कहैगी हम सब करैंगी। हम भले ही प्रिय जो की रिस सहैंगी, पर तोसूँ हम सब काहू बात सों बाहर नहीं।

माधवी : हाय-हाय यह मानै नहीं (आँसू पोंछ कर) मेरी प्यारी, मैं हाथ जोड़ूँ, हा हा खाऊँ मानि जा।

काममंजरी : सखी, यासों मति कछु कहौ, आओ हम सब मिलि कै विचार करें जासों याको काम होय।

विलासिनी : सखी, हमारे तो प्राण ताई यापें निछावर हैं पर जो कछू उपाय सूझै।

चन्द्रावली : (रो कर) सखी, एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो।

तृतीय तथा चतुर्थ पंक्ति—इन्द्रनुष बगमाल क्रमशः बनमाला और मोती-माला की याद दिलाते हैं। अतः 'क्रमालंकार' है।

सप्तम पंक्ति—'देखि देखि दामिनी की दुगुन दमकि' में 'अनुप्रास अलङ्कार है।

द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ तथा अष्टम् पंक्तियों के अन्त में 'पुनरुक्ति प्रकाश' अलङ्कार है।

यह छन्द भारतेन्दु जी के रीति-प्रेम का परिचय देता है। इसमें निम्न लिखित अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है :—

१. रूपक, यथासांख्य और स्मरण अलंकार समस्त छन्द में है।
२. यमक, अनुप्रास तथा पुनरुक्ति प्रकाश शब्दालंकार है।
३. स्वभावोक्ति अलङ्कार का प्रयोग बड़े कौशल से हुआ है।
४. यह छन्द विप्रलंभ शृङ्गार का सुन्दर उदाहरण है।

रीतिकालीन परम्परा का वर्षा वर्णन

रीतिकालीन में प्रकृति को स्वतन्त्र रूप में ग्रहण नहीं किया गया। कवियों ने प्रकृति को शृङ्गार के उद्दीपन के रूप में उपस्थित किया है। संयोग में जो प्रकृति सुख और आनन्द प्रदान करती है, वियोग में वही वियोग को उद्दीप्त करने का कारण बनती है। भारतेन्दु जी काव्य के क्षेत्र में रीति कालीन परम्परा से प्रभावित थे। 'चन्द्रावली नाटिका' के तृतीय अंक में वर्षा को उद्दीपन के रूप में उपस्थित किया गया था। वर्षा और वर्षा का वातावरण चन्द्रावली के वियोग को अत्यधिक उद्दीप्त कर देता है। वर्षा अबलाओं को जीतने के लिए कामदेव की सेना बन गई है।

''सखी देख बरसात भी किस धूम-धाम से आई है, मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूप से चारों ओर घूम-घूमकर बादल परे के परे जमाए बगपंगति का निशान उड़ाए लपलपाती नंगी तलवार सी बिजली चमकाते, गरज-गरज कर डराते, बान के समान पानी बरसा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा-सा कुछ अलग पुकार-पुकार गा रहे हैं।''

माधवी : सखो, क्यों न मानैगी तू कहै क्यों नहीं ।

चन्द्रावली : सखी, मुझे यहाँ अकेली छोड़ जाओ ।

माधवी : तू तो अकेली यहाँ का करेगी ?

चन्द्रावली : जो मेरी इच्छा होगी ।

माधवी : भलो, तेरी इच्छा का होयगी, हमहूँ, सुनैं ?

चन्द्रावली : सखी वह उपाय कहा नहीं जाता है ।

माधवी : तो का अपनी प्रान देगी ? सखी, हम ऐसी भोरी नहीं हैं तोहि अकेली छोड़ जायँगी ।

विलासिनी : सखी, तू व्यर्थ प्राण देने को मनोरथ करै है; तेरे प्राण कै तोहि न छोड़ैंगे । जौ प्राण तोहि छोड़ि जायँगे तो इनको ऐसे सुन्दर शरीर फिर कहाँ मिलैगो ।

काममंजरी : सखी ऐसी बात हम सूँ मति कहै और जो कहै सो हम 'करिबे' को तैयार हैं, और या बात को ध्यान तू सपने हू मैं मति करि । जब ताईं हमारे प्राण हैं तब ताईं तोहि न मरन देंयगी । पीछे भलेई जो होय सो होय ।

चन्द्रावली : (रोकर) हाय । मरने भी नहीं पाती । यह अन्याय !

माधवी : सखी अन्याय नहीं, यही न्याय है ।

काममंजरी : जान दे माधवी, वासों मति कछू पूछै । आओ हम तुम मिल के सलाह करैं अब का करनो चाहिए ।

विलासिनी : हाँ माधवी, तू ही चतुर है; तू ही उपाय सोच ।

माधवी : सखी, मेरे जी में तो एक बात आवै है । हम तीनि हैं सो तीनि काम बाँटि लें । प्यारी जू के मनाइवे को मेरो जिम्मा । यही काम सब में कठिन है और तुम दोउन में सो एक याके घरकेन सों याकी सफाई करावै और एक लाल जू सों मिलिबे की कहै ।

काममंजरी : लाल जो सो मैं कहूँगी । मैं बिन्ने बहुत ही लजाऊँगी और जैसे होयगो वैसे यासों मिलाऊँगी ।

माधवी : सखी, वेऊ का करें । प्रिया जो के डर सों कछू नहीं कर सकें ।

आगे कामिनी के कथन में वर्षा का यथार्थ संश्लिष्ट वर्णन भी हुआ है :—

"नदी-नाले, बावली-तालाब सब भर गये। पच्छी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुप-चाप सकपके-से होकर बैठे हैं। बीरबहूटी और जुगनूँ पारी-पारी रात और दिन को इधर-उधर बहुत दिखाई पड़ते हैं। नदियों के करारे धमाधम टूटकर गिरते हैं। सर्प निकल-निकलकर अशरण से इधर-उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे हैं। परदेशी जो जिस नगर में हैं, वहीं पड़े-पड़े पछता रहे हैं। आगे बढ़ नहीं सकते।"

परन्तु यहाँ वर्षा वियोगियों के वियोग को अत्यधिक उद्दीप्त कर देती है। उनके लिये तो प्रलय काल ही बन जाती है।—

"वियोगियों को तो मानो प्रलय-काल ही आया है।"

यह वर्षा जो वियोग में संतप्त करती है वही संयोग में दम्पत्तियों और प्रेमियों को अपार आनन्द प्रदान करती है। आनन्द का एक मादक चित्र देखिए :—

"धन्य हैं, वे जो ऐसे समय में रंग-रंग के कपड़े पहिने ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़ी प्रीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं, वा बागीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़-निचोड़कर चौगुना रंग बढ़ाते हैं। झूलते हैं, झुलाते हैं, हंसते हैं, हंसाते हैं, भीगते हैं, भिगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं और गले लगते हैं, लगाते हैं।"

वर्षा में झूला झूलने के आनन्द का सजीव चित्र नाटककार ने उपस्थित कर दिया :—

"सखी सचमुच आज तो इस कदम्ब के नीचे रंग बरस रहा है। कैसा समा बँधा है, वैसी ही झूलने वाली हैं। झूलने में रंग-रंग की साड़ी की अर्द्ध-चन्द्राकर रेखा इन्द्रधनुष की छवि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठण्डी-ठण्डी हवा खा रही है। कोई गोती बांधे लांग कसे पेंग मारती है।

विलासिनी : सो प्रिया जी को जिम्मा तेरो हुई है।

माधवी : हाँ हाँ, प्रिया जी को जिम्मा मेरो।

विलासिनी : तौ याके घर को मेरो।

माधवी : भयो, फेर का सखी काहु बात को सोच मति करै। उठि।

चन्द्रावली : सखियों। व्यर्थ क्यों यत्न करती हो। मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो।

माधवी : सखी हमारे भाग्य तो सीधे हैं। हम अपने भाग्यबल सों सब काम करैंगी।

काममंजरी : सखी; तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय है। जब तक साँसा तब तक आसा।

माधवी : तौ सखी, बस अब यह सलाह पक्की भई। जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं कहुवै खबर न परै।

विलासिनी : नहीं खबर कैसे परैगी ?

काममंजरी : (चन्द्रावली का हाथ पकड़ कर) लै सखी, अब उठि। चलि हिंडोर झूलि।

माधवी : हाँ सखी, अब तौ अनमनोपन छोड़ि।

चन्द्रावली : सखी छूटा ही सा है, पर मैं हिंडोरे न झूलूँगी। मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे झूला करते हैं—

पल पटुली पै डोर प्रेम की लगाय चारु,
आसा ही के खंभ दोय गाड़ कै धरत हैं।
झूमक ललित काम पूरन उछाह भर्‌यो,
लोक बदनामी झूमि झालर झरत हैं।।
'हरीचन्द्र' आँसू दृग नीर बरसाइ प्यारे,
पिया गुन गान सो मलार उचरत हैं।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा,
विरह-हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं।।

और सखी मेरा जी हिंडोरे पर उदास होगा।

कोई डरकर दूसरे के गले लपट जाती है। कोई उतरने को अनेक सौगन्ध देती है। पर दूसरी उसको चिढ़ाने के लिए झूला और भी झोंके से झुला देती है।"

वर्षा का यह रमणीक वातावरण चन्द्रावली के विरह को अत्यधिक उद्दीप्त कर देता है। सखी उससे झूला झूलने को कहती है। परन्तु उसके नेत्र तो सदैव ही झूले पर झूलते रहते हैं—

"पल पटुली पै डोर प्रेम की लगाय चारु,
आसा ही के खंभ दोय गाड़ कै धरत है।
झुमका ललित काम पूरन उछाह भर्यो,
लोक बदनामी भूमि झालर झरत है।
'हरीचन्द' आँसू दृग नीर बरसाइ प्यारे,
पिया गुन गान सो मलार उचरत है।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा,
विरह-हिंडोरे नैन झूल्योई करत है।"

बादलों और वर्षा के सजे हुए वातावरण को देखकर चन्द्रावली बहुत विह्वल और दुःखी हो जाती है, वह कहती है :—

"देखि घनश्याम-घनश्याम की सुरति करि,
जिय मैं विरह घटा घहरि-घहरि उठै।
त्यौंही इन्द्रधनुष बगमाल देख बनमाल,
मोतीलर पी की जिय लहिर-लहिर उठै।
'हरिचन्द' मोर पिक धुनि सुनि बंशीनाद,
बाँकी छवि बार-बार छहरि-छहरि उठै।
देखि-देखि दामिनी की दुगुन दमक पीठ,
पट-छोर मेरे हिय फहरि फहरि उठै।"

माधवी : तौ सखी तेरी जो प्रसन्नता होय ? हम तो तेरे सुख की गाहक हैं ।

चन्द्रावली : हां ! इन बादलों को देख कर तो और भी जी दुखी होता है ।

"देखि घनश्याम घनश्याम की सुरति करि,
जिय मैं विरह घटा घहरि घहरि उठै ।
त्यौंही इन्द्रधनुष बगमाल देखि बनमाल,
मोतीलर पी की जिय लहरि लहरि उठै ।
'हरिचन्द' मोर पिक धुनि सुनि बंसीनाद,
बाँकी छवि बार बार छहरि-छहरि उठै ।
देखि देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत,
पट-छोर मेरे हिय फहरि फहिर उठै ।"

हाय ! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदायी हो रही है ।

माधवी : तौ न दुखदायिनी होयगी । चल उठि घर चलि ।

काममंजरी : हाँ चलि ।

[सब जाती हैं]

।। जवनिका गिरती है ।।

।। वर्षा वियोग विपत्ति नामक तृतीय अङ्क समाप्त ।।

नाटककार ने इस अंक का नाम 'वर्षा वियोग विपत्ति' दिया है। यथार्थं में वर्षा वियोग में चन्द्रावली के लिए विपत्ति बन गई है। उसका वियोग लौकिक होता हुआ अलौकिक हो जाता है। इसी स्थिति में भक्त के पहुंच जाने पर भगवान स्वयं उसके पास खिंचे हुए आते हैं। आगे के अंक में कृष्ण योगिन के वेश में चन्द्रावली की बैठक में आते हैं और प्रत्यक्ष होकर उसे अंगीकार करते हैं।

चौथा अंक

स्थान—चन्द्रावली की बैठक

[खिड़की से यमुना जी दिखाई पड़ती हैं। पलंग बिछा हुआ, परदे पड़े हुए, इतरदान, पानदान इत्यादि सजे हुए हैं।]

[जोगिन [1] आती है]

जोगिनी : अलख ! अलख आदेश आदेश गुरु को ! अरे कोई है इस घर में ? कोई नहीं बोलता। क्या कोई नहीं है ? तो मैं क्या करूँ ? बैठू। क्या चिन्ता है। फकीरों को कहीं कुछ रोक नहीं। उसमें भी हम प्रेम की जोगिनी, तो अब कुछ गावै।

[बैठ कर गाती है]

कोई एक जोगिन रूप कियैं।
भौहैं बक छकोहैं लोयन चलि चलि कोयन कान छियैं ॥
शोभा लखि मोहत नारी नर वारि फेरि जल सबहि पियैं।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत काँधे बीन लियैं ॥२॥

बनो मनमोहिनी जोगिनियाँ।
गल सेली तन गेरुआ सारी केस खुले सिर बेंदी सोहिनियाँ।
मातै नैन लाल रंग डोर मद बोरे मोहै सबन छलिनियाँ ॥
हाथ सरंगी लिये बजावत गाय जगावत विरह अगिनियाँ ॥३॥

---

१. गेरुआ सारी, गहना सब जनाना पहिने, रंग साँवला। सेंदुर का लम्बा टीका बेंड़ा। बाल खुले हुए। हाथ में सारंगी लिए हुए नेत्र लाल। अत्यन्त सुन्दर। जब जब गावेगी सारंगी बजाकर गावेगी।

२. काफी।

३. चैती गौरी वा पीलू खेमटा।

चतुर्थ अंक

कथावस्तु :

चतुर्थ अंक का कथानक चन्द्रावली की बैठक का है। नाटककार ने इसका नाम 'परमफल नामक चतुर्थ अंक' दिया है। कृष्ण योगिन के वेश में आते हैं। अन्त में दोनों के मिलन में काथनक की समाप्ति होती है। कथावस्तु संक्षेप में निम्न प्रकार है—

योगिन अलख जगाती हुई चन्द्रावली की बैठक में आती है और वहाँ बैठकर गाने लगती है। योगिन का सौन्दर्य मन को मोहित करने वाला है। योगिन के वेश-विन्यास का नाटककार ने बड़ा ही सजीव और आकर्षक वर्णन किया है। ललिता के आने की आहट पाकर योगिन छिप जाती है। ललिता बैठक में बैठकर चन्द्रावली की प्रतीक्षा करती है और यमुना की छवि का वर्णन करती है। यहाँ यमुना-वर्णन बड़ा ही सुन्दर और चमत्कार-पूर्ण हुआ है। ललिता यमुना-छवि-वर्णन में निमग्न है। इसी समय चन्द्रावली आ जाती है और उसके काव्य-प्रेम की प्रशंसा करती है। योगिन भी एक कोने में आकर खड़ी हो जाती है। चन्द्रावली को श्रीकृष्ण की स्मृति आ जाती है। वह प्रेम में विह्वल हो जाती है। योगिन चन्द्रावली के सामने अपने को प्रकट करने का निश्चय करती है। इधर चन्द्रावली का भी बायाँ अंग फड़कता है। चन्द्रावली का मन योगिन की ओर आकर्षित हो जाता है। ललिता और योगिन का वार्तालाप होता है। योगिन के गायन ने चन्द्रावली को बहुत अधिक प्रभावित कर लिया है। ललिता और योगिन के आग्रह पर चन्द्रावली भी गाती है। व्यथा-पूर्ण गान गाती हुई चन्द्रावली बेसुध होकर गिर पड़ती है। योगिन रूप कृष्ण अपने वास्तविक वेश में आ जाते हैं और चन्द्रावली को अपनी गोद में ले लेते हैं। चन्द्रावली उन्मादिनी की भाँति कृष्ण को

जोगिन प्रेम की आई ।

बड़े बड़े नैन छुए कानन लौं चितवन मद अलसाई ।।
पूरो प्रीति रीति रस सानी प्रेमी उन मन भाई ।
नेह-नगर में अलख जगावत गावत बिरह बधाई ।।

जोगिन-आँखन प्रेम-खुमारी ।
चंचल लोयन-कोयन खुमि रही काजर रेख ढरारी ।।
डोरे लाल लाल रस बोरे फैली मुख उजियारी ।
हाथ सरंगी लिये बजावत प्रेमित प्रान पियारी ।।

जोगिन मुख पर लट लटकाई ।
कारी घूँघरवारी प्यारी देखत सब मन भाई ।।
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई ।
साँचे ढरो प्रेम की मूरति अँखियाँ निरखि सिराई ।।

[नेपथ्य में से पैंजनी की झनकार सुनकर]

अरे कोई आता है तो मैं छिप रहूँ, चुपचाप सुनूँ, देखूँ यह सब क्या बातें करती हैं ।

[जोगिन जाती है, ललिता आती है]

ललिता : हैं ! अब तक चन्द्रावली नहीं आई ! साँझ हो गई । न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर चकार चला आवै तो क्या हो ! (खिड़की की ओर देखकर) आह ! यमुना जी की कैसी शोभा हो रही है । जैसे वर्षा का बीतना और शरद का आरम्भ होना वैसा ही वृन्दावन के फूलों की सुगन्धि से मिले हुए पवन की झकोर से यमुना जी का लहराना कैसा सुन्दर और सुहावना है कि चित्त को मोहे लेता है । आहा ! यमुना जी की शोभा, तो कुछ कहीं ही नहीं जाती ! इस समय चन्द्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती । वह देख ही के क्या करती, उलटा उसका बिरह और बढ़ता (यमुना जी की ओर देखकर) निस्सन्देह इस समय बड़ी ही शोभा है !

अपनी भुजाओं में लपेट लेती है। वह उनसे विलग न होने का अनुनय करती है।

इसी समय विशाखा आती है। वह ज्येष्ठा नायिका राधा का सन्देश चन्द्रावली तथा कृष्ण को सुनाती है, जिससे नायक को चन्द्रावली के कुंज में जाने की अनुमति मिलती है। विशाखा चन्द्रावली के प्रेम की महिमा का वर्णन करती है। कृष्ण और चन्द्रावली गलबांहीं डालकर बैठते हैं। ललिता और विशाखा गाती हैं। यहीं फल की प्राप्ति हो जाती है और कथानक समाप्त होता है।

शब्दार्थ

[पृष्ठ १०२]

अलख-अलख=योगियों का अपना शब्द, इसका अर्थ होता है कि अप्रत्यक्ष (अथवा निर्गुण) ईश्वर को याद करना। योगी लोग भिक्षाटन के समय इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। आदेश आदेश आदेश गुरू की=गुरू की आज्ञा ही मुख्य है। बंक=टेढ़ी। छकौहैं=प्रेम में मस्त। लोयन=लोचन, आँखें। कोयन=आँखों के कोए (कोने)। कानछियैं=कान को छूते हैं, आँखें इतनी बड़ी और कटीली हैं कि कानों का स्पर्श करती हैं। चलि-चलि=चंचल। बारि फेरि जल सबहि पियैं=लोकोक्ति, सभी उसके ऊपर अपने आप को न्यौछावर करते हैं। मन्मथ=कामदेव। काँधे=कंधे पर। सेली=योगियों की माला। सारी=साड़ी। सोहिनियाँ=सुन्दर। मातैं=मतवाले। छलिनयाँ=छल करने वाली। विरह अगिनियाँ=विरह की अग्नि, भगवान से मिलने की इच्छा; राग विशेष-चैंती गौरी वा पीलू खेमटा।

[पृष्ठ १०४]

चितवन मद अलसाई=नशे के कारण अलसाई हुई आँखें। गावत बिरह-बधाई=वियोग का गीत गाती है।

खुमारी=नशा। खुभि रही=चुभ रही। ढरारी=बहने वाली। उजि-यारी=चमक पूर्ण।

लट=बाल। कारी घूँघरवारी=काले काले घुँघराले बालों वाली। छूटे=बिखरे हुए; खुले हुए। बागे=बाना, वेश व योगियों का एक वस्त्र

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
के प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥
कहुँ तीरन पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करि कै कर बहु पीय को टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥
कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मित्र प्रस्तुति उच्चारत॥
कै ब्रज तियगन बदन-कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरिपद-परस-हेत कमला बहु आई॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रज-मण्डल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि कर—सतधा निज जल धरत॥
तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका-निसि आवति।
जल मैं मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्वल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा॥
सो को कवि जो छवि महि सकै ता छन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छवि इकसी नभ तीर की॥
परत चन्द-प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छवि छायो॥

विशेष। निरखि = देखकर। सिराई = ठंठी हुई, चैन मिला। पैंजनी = स्त्रियों द्वारा पैरों में पहने जाना वाला एक गहना। साँझ = सन्ध्या।

[पृष्ठ १०६]

तरनि-तनूजा = सूर्य की पुत्री, अथवा यमुना। तरुवर = वृक्ष। कूल = किनारा। मुकुर = दर्पण, आइना। प्रणवत = प्रणाम करते हैं। लोभा = लोभ से। आतप-ब्ररन = गर्मी दूर करने के लिए। नै रहे = नत हो रहे, झुक रहे। लहत = प्राप्त करते हैं।

अमल = निर्मल, श्वेत। सैवालन = सिवार। पांतिन = पगति, लाइन। गोभा = अंकुर। प्रिय-प्रिया = कृष्ण और राधा। अनगिन = अनगिनती, अनेक। कैं करिकै कर = अथवा हाथ उठा कर। उपचार = सामग्री।

बदन = मुख। परस हेतु = स्पर्श करने को। सात्विक = सात्विक भाव, इसका रंग श्वेत माना जाता है। अनुराग = प्रेम, इसका रंग लाल माना गया है। बगरे फिरत = फैले हुए हैं। भान = भवन। सतधा = सौ प्रकार से। जल धरत = जल में धारण करती हैं।

सतधा निज जल धरत = उसको लक्ष्मी का घर जानकर उसने इसे सौ टुकड़े कर रखा है।

छिन = क्षण, समय। चन्द्र-जोति = चांदनी। राका निसि = पूर्णिमा की रात्रि। नभ = आकाश। अबनी = पृथ्वी। तनावति = तम्बू तानती है। मुकुरमय = दर्पण जैसा। ओभा = चमक। जुड़ावत = शान्ति पाते हैं, शीतल होते हैं। इकसा = एक सी।

जलमधि = जल के बीच। लोल = चंचल। लहि = प्राप्त कर। रासरमन = रास क्रीड़ा। ता = उसका। प्रतिबिम्ब = परछाइं। लखात है = दिखाई देता है।

[पृष्ठ १०८]

सत = सौ। दुरि भाजत = छिप कर भागता है। पवन-गवन बस = पवन के चलने के कारण। साजत = शोभा पाता है। ससि = चन्द्रमा। भरि अनुराग = प्रेम में भर कर, प्रेम के कारण। कलोलैं = किल्लोल, क्रीड़ा। बालगुडी = पतंग। धावती = दौड़ती हुई। अवगाहत = स्नान करती हुई।

कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-ग्राभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि मूरति वसति ता प्रतिबिम्ब लखात है।।
कबहुँ होत सत चन्द कबहु प्रगटत दूरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत।।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लौटत डोले।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै।।
कै बाल गुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती।।
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल।।
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत।।
कैं बहुत रजत चकई चलत कैं फुहार जल उच्छरत।
कैं निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत।।
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत।।
चक्रबक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहुँ भ्रमरावलि गावत।।
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब निज धरत।।
कहूँ बालुका विमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई।।
पिय के आगम हेत पांवड़े अनहु बिछाये।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराये।।
मनु मुक्त मांग सोभित भरी श्यामनीर चिकरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर मैं, ब्रज निवास लखि हिय हरसि।।

[चन्द्रावली अचानक आती हैं]

चन्द्रावली : वाह वाहरी बैहना, आजु तो बड़ी कविता करी। कविताई की मौट की मोट खोल दीनी। मैं सब छिपे-छिपे सुनती थी।

जुग = दोनों । पच्छ = पक्ष, कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष । प्रतच्छ होत = प्रकट होते हैं । मिटि जात = समाप्त हो जाते हैं । तारागन = तारे । ठगन = ठगने के लिए । लुकत = छिप जाता है । ससि = चन्द्रमा । अविकल = ज्यों का त्यों । कालिन्दी = यमुना । नीर = जल । रजत चकई = चाँदी की चकई । चकई = एक खिलौना, इसको डोरी में बाँध कर घुमाया जाता है । निसिपति मल्ल = चन्द्रमा रूपी पहलवान । अनेक विधि = अनेक प्रकार से ।

कूजत = बोलते हैं । कलहंस = सुन्दर हंस । मज्जत = नहाते हैं । पारावत = कबूतर । कारंडव = बत्तख । चक्रवाक = चकवा । बक् = बगुला । सुक = तोता । रोर = शोर । जिय धरत = हृदय में धारण करते हैं ।

रजत-सीढ़ि = चाँदी की सीढ़ियाँ । पावड़े = पायंदाज । रत्नरासि = रत्नों का ढेर । करि चूर = चूरा करके । बगराए = फैला दिए हैं । मुक्त माँग = मोतियों में भरी हुई माँग । चिकुरन = बाल । सतगुन = सत्वगुण ।

मोट की मोट = गठरी की गठरी, अत्यधिक ।

[पृष्ठ ११०]

बीर = बहिन । बिलमाई = विलमी हुई । जरदी = पीलापन ।

छरी-सी = छली हुई । छकी = प्रेम में सराबोर । जकी = चकपकाई हुई, भौचक्की । खिलौना सी = निर्जीव सी । जीवति मरी रहै = जीवित होते हुए भी मरी के समान है ।

मान न मान मैं तेरा मेहमान = (लोकोक्ति) जब कोई किसी के घर बिना बुलाए पहुँच जाता है ।

मेरो पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम = पति तो बात भी नहीं करता है और कहती है कि मैं सौभाग्यवती हूँ । (लोकोक्ति) आदर सम्मान के अभाव में भी विश्वासी बना रहना ।

केहि कारनै = किस कारण से । कित = कहाँ । आसन = स्थान । पथ = मार्ग, सम्प्रदाय । गादी = गद्दी ।

संसार को जोग····दूसरो है = संसार का योग तो प्रेम पर है, परन्तु

[दबे पांव से योगिन आकर एक कोने में खड़ी हो जाती है]

ललिता : भली भली वीर, तोहि कविता सुनिबे की सुधि तौ आई, हमारे इतनोई बहुत है।

चन्द्रावली : (सुनते ही स्मरणपूर्वक लम्बी साँस लेकर)

सखीरी क्या सुधि मोहि दिवाई।
हौं अपने गृह कारज भूली, भूलि रही बिलसाई ॥
फेर वहै मन भयो जात अब मरिहौ जिय अकुलाई।
हौं तबही लौं जगत काज की जब लौं रहौ भुलाई ॥

ललिता : चल जान दै, दूसरी बात कर।

जोगिनी : (आप ही आप) निस्सन्देह इसका प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आते ही इसके कपोलों पर कैसी एक साथ जरदी दौड़ गई। नेत्रों में आँसुओं का प्रवाह उमंग आया। मुँह सूखकर छोटा सा हो गया। हाय ! एक ही पल में यह तो कुछ का कुछ हो गई। अरे इसकी तो यही गति है—

छरी सी छकी-सी जड़ भई सी जकी सी घर
हारी-सी बिकी-सी सो तो सबही घरी रहै।
बोले तें न बोलै दृग खोलै नाहिं डोलै बैठि
एक टक देखै सो खिलौना सी धरी रहै ॥
'हरिचन्द' औरो घबरात समुझायें हाय
हिचकि हिचकि रोवें जीवित मरी रहै।
याद आये सखिन रोवावै दुःख कहि-कहि
तौ लौं सुख पावै जौलौं मुरछि परि रहै ॥

अब तो मुझसे रहा नहीं जाता। इससे मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं।

चन्द्रावली : (ललिता की बात सुनी अनसुनी करके बायें अंग का फरकना देखकर आप ही आप) अरे यह असमय में अच्छा सगुन क्यों होता है। (कुछ ठहर कर) हाय ! आशा भी क्या बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अन्धा कर देता है। भला वह कहाँ

आपके योग में सांसारिक प्रेम के लिए स्थान ही नहीं दिखाई देता है आपका योग तो दुनिया से निराला (भिन्न) ही दिखाई देता है। रमक = प्रकार (बंगाली प्रयोग)।

[पृष्ठ ११२]

पचि = थक कर। पचि मरत = परिश्रम करके वृथा परेशान होते हैं। मुद्रा = साधुओं के पहनने का छल्ला।

लट = लटकते हुए गुच्छेदार बाल। मनके = माला के दाने। सांची = सच्ची। बाना = वेश। असगुन की मूरति = अपशकुन का चिह्न। तमोल = पान। खुमारी = नशा। पथ……………जाना—नैनों का अनुरक्त होना ही हमारा धर्म है।

शिवजी…………सिखाना = उसका विरह-योग इतना महान् है कि वह शिवजी जैसे बड़े एवं लोक प्रसिद्ध योगी को भी योग की शिक्षा देने का दम भरती हैं।

जो बेधे डालता = हृदय को घायल किए देता है। सुधा = अमृत। धाम = घर। बन बन छान फिरी = बन बन ढूँढ़ती फिरी। डगर-डगर = गली-गली। कलेजा ऊपर को खींचना = मुहावरा, अत्यधिक व्याकुल होना।

[पृष्ठ ११४-१३०]

संकोच = लज्जा। पाहुने = अतिथि। बहाली बत्ता = बहानेबाजी। मुस्तैद = तैयार। आस = सहारा।

अलख गति = जो न जानी जा सके। पिया प्यारी = श्रीकृष्ण और राधा। यहाँ राधा की जगह चन्द्रावली से तात्पर्य है।

यारी की = प्रेम की लगन की। त्रिभुवन = तीनों लोक, स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। रति = प्रेम। गति = मर्यादा। मति = बुद्धि। करार = वायदा। छवि = शोभा।

चकित = चकराई हुई, भौंचक्की। ठगा-सी = जिसका सब कुछ छिन गया हो। ठगी सी = जो भूली हुई हो। जकी = स्तब्ध। मद = शराब। मृगछौनी = हिरण का बच्चा।

तन्मय = लीन, अपने आपको भूला हुआ। जल पर नोन = मुहावरा, दुःख

और मैं कहाँ—पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि अच्छा सगुन हुआ है तो जरुर आवेंगे। (हँसकर) हूँ—उनको हमारी इस बखत फिकिर होगी! "मान न मान मैं तेरा मेहमान" मन को अपने ही मतलब की सूझती है। "मेरी पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागन नाम" (लम्बी साँस लेकर) हा! देख प्रेम की गति! यह कभी आशा नहीं छोड़ती। जिसको आप चाहो वह चाहे झूठ मूठ भी बात न पूछे पर अपने जी को यह भरोसा रहता है कि वे भी जरूर इतना ही चाहते होंगे। (कलेजे पर हाथ रख कर) रहो-रहो क्यों उमंगे आते हो, धीरज धरो, वे कुछ दीवाल में से थोड़े ही निकल आवेंगे।

जोगिनी : (आप ही आप) होगा प्यारी, ऐसा ही होगा। प्यारी, मैं तो यहीं हूँ। यह मेरा ही कलेजा है कि अन्तर्यामी कहलाकर भी अपने लोगों से मिलने में इतनी देर लगती है। (प्रगट सामने बढ़कर) अलख! अलख!

[दोनों आदर करके बैठाती हैं]

ललिता : हमारे बड़े भाग जो आपु-सी महात्मा के दर्शन भये।

चन्द्रावली : (आप से आप) न जाने क्यों इस जोगिन की ओर मेरा मन आप से आप खिंच जाता है।

जोगिनी : भलो हम अतीतन को दरसन कहा, यों ही नित्य ही घर-घर डोलत फिरैं!

ललिता : कहाँ तुम्हारे देस है?

जोगिनी : प्रेम नगर पिय-गाँव।

ललिता : कहा गुरू कहि बोलहीं?

जोगिनी : प्रेमी मेरो नाम।

ललिता : जोग लिया केहिकारनैं?

जोगिनी : अपने पिय के काज।

ललिता : मंत्र कौन?

जोगिनी : पिय नाम इक,

को अधिक बढ़ा देना। पीड़ा के समय पीड़ा बढ़ाने वाली बात कहना अथवा ऐसी सामग्री प्रस्तुत करना जो पीड़ा को और भी बढ़ा दे। विरह से पीड़ित चन्द्रावली के लिए साहित्य और संगीत का योग ऐसा ही है।

अनुभव सिद्ध अनुराग = अनुभव द्वारा प्राप्त प्रेम का रूप, चन्द्रावली ने स्वयं प्रेम का अनुभव किया था।

अर्द्धोन्माद = आधा पागलपन।

पत = लज्जा। खोना = नष्ट करना, गँवाना। धरिहै उलटौ नाऊं = उल्टे बदनाम करेगा। जनाहूं = बताऊ। सुजानु शिरोमन = चतुरों में श्रेष्ठ अर्थात् श्री कृष्ण। हियरो = हृदय। काढ़ि = निकाल कर। मार्मिक = मर्म (भेद) की बात जानने वाली। पटुका = फेटा, कमर में बाँधने का कपड़ा।

भुजनि = भुजाओं। कसक = पीड़ा। रंकनि = गरीबनी। अमित = असीमित, बहुत अधिक। अनुदित = प्रतिदिन। सुधा-निधि = चन्द्रमा। लाहु = लाभ।

प्रिय तुम और कहूँ जिन जाहु पद में 'रूपक' अलंकार है।

तुम = तेरे। केहि विधि = किस प्रकार। नाखौं = डालूँ।

भाखौ = कहूँ। जनमन की = अनेक जन्मों की, जन्म जन्मान्तर की। अधर सुधा = ओठों का अमृत रूपी रस।

जुगुल = राधा-कृष्ण। अनुग्रह = कृपा। यहाँ पुष्टिमार्गी विचारधारा का निरूपण है।

निहचै = निश्चय। अकथ = जो कही न जा सके। बिनकी = उनकी। रिनियाँ = ऋणी।

स्वामिनी = राधिका। सुखेन = सुखपूर्वक। टहलनी = दासी, नौकरानी। प्रेम की टकसार = उत्कृष्ट प्रेम। परिलेख = वर्णन।

वरु = चाहे। अघ = पाप। भरत—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र के प्रणेता। नाटक के अन्त में 'भरतवाक्य' देना प्राचीन ढंग के नाटकों की परम्परा रही है। आचारज = आचार्य, पंडित, ज्ञानी। मेल न मानै = मेल नहीं करते हैं, अलग-अलग समझें, (जो लोग ऐसा करें, जो परमार्थ और स्वार्थ को दो पृथक वस्तुएँ समझें वे हो पण्डित धर्म के तत्व को जानने वाले समझे जाएँ। थिर—स्थिर। जन वल्लभी = वल्लभ-समुदाय को मानने वाला। अधिकार = कृष्ण लीला को

ललिता : कहा तज्यो ?

जोगिनी : जग-लाज ।

ललिता : आसन कित ?

जोगिनी : जितही रमे,

ललिता : पन्थ कौन ?

जोगिनी : अनुराग ।

ललिता : साधन कौन ?

जोगिनी : पिया मिलन ।

ललिता : गादी कौग ?

जोगिनी : सुहाग ।

नैन कहें गुरु मन दिया, विरह सिद्धि उपदेस ।
तब सों सब कुछ छोड़ि हम, फिरत देस परदेश ।।

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय ! यह भी कोई बड़ी भाँरी वियोगिनी है तभी इसकी ओर मेरा मन आपसे आप खिचा जाता है ।

ललिता : तो संसार का जोग तो और ही रकम की है और आपको तो पन्थ ही दूसरो है । तो भला यह पूछें कि का संसार के और जोगी लोग वृथा जोग साधैं हैं ।

जोगिनी : यामै का सन्देह है, सुनो (सारङ्गी छेड़ कर गाती है) :—

पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिरधारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिनी नारी ।।
विरहागिनी धूनी चारो ओर लगाई ।
बसी धुनि की मुद्रा कानो परिहाई ।।
असुअन को सेली गल में लगत सुहाई ।
तन धूर जमीं सोई अंग भभूत रमाई ।।
लट उरझि रही सोइ लटकाई लट कारी ।
साँची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी ।।
गुरु बिरह दियो उपदेश सुनी ब्रजबाला ।
पिय बिछुरन दुःख बिछाओ तुम मृगछाला ।।

देखने का अधिकार उसी को होता है, जिसके ऊपर भगवान श्री कृष्ण की कृपा होती है।

पदों के अर्थ

"कोई एक जोगिन रूप किए .... लिये।"

अर्थ—कृष्ण योगिन का वेश धारण कर चन्द्रावली की बैठक में आते हैं। यहाँ योगिन रूपी कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन है। एक योगिन रूप सँवार कर आई है। उसकी भौंहें टेढ़ी हैं। आँखें प्रेम से छकी हुई हैं और उनकी कोरें कान तक छू रही हैं। उसकी शोभा को देखकर सभी नर-नारी मोहित हो जाते हैं और अपने को न्यौछावर करने की लालसा करते हैं। वह चतुर कामदेव की तरह अलख जगाती फिरती है, और उसके कंधे पर वीणा शोभा दे रही है।

"बनी मनमोहिनी जोगिनियाँ।"

अर्थ—योगिन मन को मोहित करने वाला रूप धारण करके आई है। वह गले में सेली और शरीर पर कौषेय साड़ी धारण किये हुए हैं। उसके केश खुले हुए हैं और मस्तक पर बेंदी शोभा दे रही है। उसके मद भरे नेत्र और उनकी लाल रेखायें सबके मन को मोहित किये हुए हैं। उसके हाथ में सारंगी है, जिसे बजाकर वह गाती है और अपने मोहक गीत से कामाग्नि को उद्दीप्त करती है।

"जोगिन प्रेम की आई।"

अर्थ—प्रेम रूपी योग को साधने वाली योगिन आई है। उसके बड़े-वड़े नेत्र कानों तक लम्बायमान हैं। उसकी चितवन मदमाती होकर अलसाई हुई है। वह प्रेम-रस से सनी हुई है, तथा प्रेमी जनों के मन को भाने वाली है। वह प्रेम के नगर में अलख जगा रही है और विरह की बधाई गा रही है।

"जोगिन आँखन प्रेम खुमारी।"

अर्थ—योगिन के मुख पर प्रेम की खुमारी छाई है। उसके नेत्रों के कोये चंचल हैं, उनमें काजल की रेखा ढुलक रही है। उसके नेत्रों में सरस रक्ताभ रेखायें हैं। उसका मुख कान्ति से दमक रहा है और प्रेमियों को प्रिय वह योगिन हाथ से सारंगी बजा रही है।

मन के मनके की जपो पिया की माला ।
बिरहिन की तो हैं सभी निराली चाला ।।
पीतम से लगि लौ अचल समाधि न टारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।।
यह है सुहाग का अचल हमारे बाना ।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना ।।
सिर सेंदूर देकर चोटी गूँथ बनाना ।
कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना ।।
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।।
है पंथ हमारा नैनों के मत जाना ।
कुल लोक वेद सब औ परलोक मिटाना ।।
शिवाजी से जोगी को भी जोग सिखाना ।
'हरिचन्द्र' एक प्यारे से नेह बढ़ाना ।।
ऐसे वियोग पर लाख जोग बलिहारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।।

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय हाय ! इसका गाना कैसा जी को बेधे डालता है। इसके शब्द का जी पर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है कि वर्णन के बाहर है, या मेरा जी ही चंचल हो रहा है। हाय ! ठीक प्रान प्यारे की सी इसकी आवाज है । (बलपूर्वक आँसुओं को रोक कर और जी बहला कर) कुछ इस से और गवाऊँ । (प्रकट) योगिन जी कष्ट न हो तो कुछ और गाओ । (और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है)

जोगिन : (मुसकाकर) अच्छा प्यारी । सुनो

[गाती है]

जोगिन रूप सुधा की प्यासी ।
बिनु पिय मिलें फिरत बन ही बन छाई मुखहि उदासी ।।
भोग छोड़ि धन धाम काम तजि भई प्रेम बनवासी ।।
पिय हित अलख-अलख रट लागी पीतम रूप उपासी ।।

"जोगिनी मुख पर लट लटकाई।"

अर्थ—योगिन के मुख पर अलकें लटक रही हैं। उसके केश काले और घुँघराले हैं। वह सबको प्रिय लगती है। उसके खुले हुए केश तथा गेरुआ वस्त्र उसकी छबि को दूना कर रहे हैं। उसकी आकृति साँचे में ढली लगती है उसकी प्रेममय मूर्ति नेत्रों को आनन्द प्रदान करती है।

विशेष—ऊपर के पदों में सौन्दर्य का वर्णन प्रेम के उद्दीपन के रूप में हुआ है।

"तरनि-तनूजा............लहत।"

अर्थ—यहाँ चन्द्रावली की सखी ललिता यमुना के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है। यमुना के तट पर तमाल के बहुत से वृक्ष छाये हुए हैं। वे धारा के उपर झुके हुए ऐसे लगने हैं, मानो जल को स्पर्श करने को झुक रहे हैं।

वे ऐसे मालूम होते हैं कि ग्रीष्म से ताप का निवारण करने के लिए सब एकत्रित होकर शोभा पा रहे हैं अथवा भगवान की सेवा के लिए झुके हुए हैं जो भगवान को देखकर सुख पाते हैं।

अलंकार—इस पद्यांश में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

कहूँ तीर पर कमल............मिलन मन मोहई।

अर्थ—कवि यमुना तट की शोभा की प्रशंसा करता है कि किनारों पर कहीं श्वेत कमल अनेकों भाँति की शोभा पा रहे हैं। कहीं काई के बीच में कमोदिनी अनेक पक्तियों में खड़ी है। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो वे अनेकों नेत्रों को धारण करके यमुना जी में व्रज को देख रही हैं अथवा प्रीतम और प्रियतमा दोनों के प्रेम की अगणित शोभा को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं अथवा अनेक हाथ करके प्रीतम को बुला रही हैं जो अपने पास ही शोभा पा रहे हैं। या ऐसा मालूम होता है कि पूजन की अनेक सामग्री लेकर प्रीतम से मिलने के लिए मन को मोहित कर रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

कै पिय पद............जल धरत।

अर्थ—खिले हुए कमल ऐसे लगते हैं, मानो यमुना इनको प्रियतम कृष्ण

मनमोहन प्यारे तेरे लिए जोगिन बन-बन छान फिरी।
कोमल से तन पर खाक मली ले जोग स्वाँग सामान फिरी।।
तेरे दरसन कारन डगर डगर करती तेरा गुन गान फिरी।
अब तो सूरत दिखला प्यारे 'हरिचन्द' बहुत हैरान फिरी।।

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय ! यह तो सभी बातें पते की कहती है। मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिंच आता है। हाय। अब तो सूरत दिखला प्यारे।

जोगिन : तो अब तुमको भी गाना होगा। यहाँ तो फकीर हैं। हम तुम्हारे सामने गावें, तुम हमारे सामने न गाओगी? (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की अमृत बानी तो सुनेंगे। (प्रकट) हाँ। देखो हमारी यह पहली भिक्षा खाली न जाय, हम तो फकीर हैं, हमसे कौन लाज है?

चन्द्रावली : भला मैं गाना क्या जानूँ। और फिर मेरा जी भी आज अच्छा नहीं है, गला बैठा हुआ है। (कुछ ठहर कर नीची आँख करके) और फिर मुझे संकोच लगता है।

जोगिन : (मुसकाकर) वाह रे संकोच वाली ! भला मुझसे कौन संकोच है? मैं फिर रूठ जाऊँगी जो मेरा कहना न करेगी।

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय ! इसकी कैसी मीठी बोलन है, जो एक साथ जी को छीने लेती है। जरा से झूठ क्रोध से जो इसने भौंहैं तनेनी की हैं वह कैसी भली मालूम पड़ती हैं। हाय। प्राणनाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिनी नहीं बन आए हो, (प्रकट) नहीं-नहीं रूठो मत, मैं क्यों न गाऊँगी। जो भला बुरा आता है सुना दूँगी, पर फिर भी कहती हूँ, आप मेरे गाने से प्रसन्न न होंगी ऐ। मैं हाथ जोड़ती हूँ, मुझे न गवाओ। (हाथ जोड़ती है)

ललिता : वाह। तुझे नये पाहुने की बात अवश्य माननी होगी। ले, मैं तेरे हाथ जोड़ूँ हूँ क्यों न गावेगी? यह तो उससे वहाली बता जो न जानती हो।

के चरणों के उपमान जानकर हृदय में धारण किये हुए हो। इन पर जो भौंरे गुंजार करते हैं वे ऐसे लगते हैं, मानो यमुना अपने कोटि मुख करके कृष्ण की स्तुति कर रही हो। या इन कमलों के रूप में ब्रज बालाओं का सुन्दर मुख झलक रहा हो या हरि के चरणों का दर्शन करने के लिए बहुत सी लक्ष्मियाँ आ गई हों या सात्विक और अनुराग दोनों गुण ब्रज-मंडल में फिर रहें हों। या इन कमलों को लक्ष्मी का निवास समझ कर यमुना सदैव को इनको हृदय में धारण किये रहती हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

परत चन्द्र-प्रतिबिम्ब कहूँ·······ता प्रतिबिम्ब लखात है।

अर्थ—कहीं चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पानी में पड़कर चमक रहा है। कहीं चंचल लहरें नाचती हुई मन को अच्छी लगती हैं। मानों चन्द्रमा भगवान के दर्शन के लिए जल में बसता हुआ शोभा पाता है अथवा तरंगें हाथ में मुकुट लिए शोभा दे रही है अथवा रास-रमण के समय भगवान के मुकुट की चमक जल में दिखाई देती है अथवा जल के मध्य कृष्ण की मूर्ति बसती है, उसी का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

अलंकार—उत्प्रेचा।

कबहुँ होत सत चन्द्र·······ब्रज रमनी जल आवती।

अर्थ—यमुना जी में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी शोभा का हरिश्चन्द्र वर्णन करते हैं कि कभी लहरों के कारण पानी में अनेकों चन्द्रमा बन जाते हैं, कभी वह अधिक लहरों के कारण बिल्कुल छिप कर भाग जाता है और कभी जब लहरें शान्त हो जाती हैं फिर दिखाई देने लगता है। वायु चलने के कारण परछाईं बहुत शोभा देती है, इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा प्रेम में परिपूर्ण होकर यमुना जी के जल में लोटता फिरता है अथवा ऐसा मालूम होता है कि तरंगों की डोर जो झूला में पड़ी है कलोल कर रही है।

अथवा ऐसा मालूम होता है कि पतंग आकाश में इधर-उधर उड़ती हुई शोभा पा रही है, अथवा कोई व्रज की स्त्री पानी को थाहती हुई जल भरने को हुई शोभा पा रही है।

अलंकार—वस्तूत्प्रेचा अलंकार।

चन्द्रावली : तो तूही क्यों नहीं गाती ? दूसरों पर हुकुम चलाने को तो बड़ी मुस्तैद होती है।

जोगिन : हाँ हाँ सखी तू ही न पहिले गा। ले मैं सारंगी से सुर की आस देती जाती हूँ।

ललिता : यह देखो, जो बोले सो घी को जाय। मुझे क्या, मैं अभी गाती हूँ।

[राग विहाग गाती है]

अलख गति जुगल पिया प्यारी की।
को लखि सकै लखत नहि आवै तेरी गिरधारी की॥
बलि बलि बिछुरनि मिलनि हंसनि रूठनि नित ही यारी की।
त्रिभुवन की सब रति गति मति छबि या पर बलिहारी की॥

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय ! यहाँ आज क्या हो रहा है, मैं कुछ सपना तो नहीं देखती। मुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते हैं। मेरे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता कि मैं क्या सुन रही हूँ। क्या मैंने कुछ नशा तो नहीं पिया है ? अरे ! यह योगिन कहीं जादूगर तो नहीं है ! (घबड़ानी-सी होकर इधर-उधर देखती है)। (उसकी दशा देखकर ललिता सकपकाती है और जोगिन हँसती है)

ललिता : क्यों ? हँसती क्यों है ?

जोगिन : नहीं, योंही मैं इसको गीत सुनाया चाहती हूँ पर जो यह फिर गाने का करार करे।

चन्द्रावली : (घबड़ाकर) हाँ मैं अवश्य गाऊँगी। आप गाइए (वह फिर ध्याना-वस्थित सी होती है।)

जोगिन : (सारंगी बजा कर गाती है)

(संकरा)

तू केहि चितवति चकित मृगी सी ?
केहि ढूँढत तेरो कहा खोयो क्यौं अकुलाति लखाति ठगीसी॥
तन सुधि कर उघरत री आँचर कौन ख्याल तू रहति खगीसी।
उतरु न देत जकीसी बैठी मद पीयो कै रैन जगीसी॥

मनु जुग पच्छ..................करत ।

अर्थ—यमुना के जल में चन्द्रमा के बिम्ब से दो पक्ष प्रत्यक्ष हो जाते हैं। उनमें चन्द्रमा तारागण रूपी ठगों में छिपता और प्रकट होता है। या यमुना की लहर जितना आश्चर्य उत्पन्न करती है चन्द्रमा उतने ही रूप धारण कर उससे मिलने को आता है या चाँदी की बहुत-सी चकई चल रही हो या फुहार का जल उछल रहा हो या चन्द्रमा रूपी मल्ल अनेक प्रकार से उठ बैठकर कसरत कर रहा हो।

अलंकार—सन्देह से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

कूजत..................धरत ।

अर्थ—कहीं कलहंस क्रीड़ा कर रहें हैं और कहीं कबूतर मज्जन कर रहे हैं, कहीं खिरखिदे उड़ रहे हैं और जल के मुर्गे दौड़ रहे हैं। कहीं चक्रवाक निवास कर रहे हैं और कहीं पर बगुले ध्यान लगा रहें हैं। कहीं पर शुक और पिक जल पी रहे हैं, कहीं भ्रमरावलियाँ गान कर रहीं हैं। कहीं किनारे पर मोर नाचते हैं और नाना प्रकार के पक्षी शोर करते हैं। सभी जल पान करके, और स्नान करके तट की शोभा को हृदय में धारण करते हैं।

कहूँ बालुका.......हरसि ।

अर्थ—यहाँ पर कवि बालू की शोभा का वर्णन करता है और कहता है कि कहीं पर स्वच्छ बालू चारों ओर शोभा पा रही है।

ऊँची-नीची बालू स्वच्छ है जो चाँदी के समान चमक रही है और चाँदी की सीढ़ियों के समान शोभा पा रही है। अथवा वे ऐसे मालूम होते हैं मानो स्वामी के आगमन के लिये उन्होंने पांवड़े बिछा दिये हैं। बालू इतनी चमक रही है कि रत्नों का (हीरा, मोती, नीलम, पुखराज आदि) चूर्ण बनाकर फेंक दिया है। या बालू ऐसी मालूम होती है मानो कोई स्त्री माँग में मोती भर रही है और नीचे पानी रूपी बालों का स्पर्श कर रही है अथवा ऐसा प्रतीत होता है साक्षात सतोगुण ही पानी में फैला हुआ है जो ब्रज के निवास को देख-कर अपने मन में प्रसन्न हो रहा है।

अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

चौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगीसी ।
भूलि बैखरी मृग छौनी ज्यौं निज दल तजि कहुँ-दूर भगीसी ।।
करति न लाज हाट घर बर की कुल मरजादा जाति डगीसी ।
'हरीचन्द' ऐसिहि उरझी तौ क्यों नहि डोलत संग लगीसी ।।
तू केहि चितवति चकित मृगीसी ।।

चन्द्रावली : (उन्माद से) डोलूँगी-डोलूँगी संग लगी (स्मरण करके लजा कर आप ही आप) हाय-हाय ! मुझे क्या हो गया है । मैंने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आये गये भीतर-बाहर वाले सबके सामने कुछ बक उठती हूँ । भला यह एक दिन लिये आई बिचारी जोगिन क्या कहेगी ? तो भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रक्खी नहीं तो मैं—राम—राम -- नहीं-नहीं मैंने धीरे से कहा था किसी ने सुना न होगा । अहा ! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है । उस पर जले पर नोन । हाय । नाथ ! हमें अपने उन अनुभव सिद्ध अनुरागों और बढ़े हुए मनोरथ को किसको सुनावें जो काव्य के एक-एक तुक और संगीत की एक-एक तान से लाख-लाख गुने बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्ज्वल सरस और प्रेममय हो जाते हैं, मानों सब प्रत्यच्च अनुभव कर रहे हैं । पर हां ! अंत में करुण रस में उनकी समाप्ति होती है, क्यों कि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है ।

जोगिन : वाह अब यह क्या सोच रही हो ? गाओ, ले अब हम नहीं मानेंगी ।

ललिता : हाँ सखी, अब अपना वचन सच कर ।

चन्द्रावली : (अर्द्धोन्माद की भाँति) हाँ हाँ, मैं गाती हूँ ।

[कभी आँसू भर कर, कभी कई बेर, कभी ठहर कर, कभी भाव बता कर, कभी बेसुर-ताल ही, कभी ठीक-ठीक कभी टूटी आवाज से पागल की भाँति गाती है]

"सखी री क्यों सुधि मोहिं दिवाई ।"

अर्थ—ललिता के काव्य-प्रवाह को सुनकर चन्द्रावली के हृदय में कृष्ण की स्मृति जागृत हो जाती है, वह ललिता से कहती है कि 'हे सखी ! तुमने मुझे श्रीकृष्ण का स्मरण क्यों दिला दिया ? मैं तो अपने घर के कार्जों में भूली हुई थी । मैं अपने मन में भूलकर समय व्यतीत कर रही थी । परन्तु अब फिर स्मरण आ जाने से हृदय व्याकुल होने लगता है । ऐसा लगता है कि अकुलाहट में मेरे प्राण ही चले जायेंगे । मैं संसार के कामों में तभी तक लीन रह सकती हूँ, जब तक श्रीकृष्ण को भूली रहूँ ।

"छरी-सी, छकी सी..........परी रहै ।"

अर्थ—इस छन्द में योगिन चन्द्रावली की विरह-विह्वल दयनीय दशा का वर्णन कर रही है । चन्द्रावली सदैव छली हुई जड़ वस्तुओं के समान स्तब्ध बनी हुई तथा बिकी हुई सी सदैव दिखाई पड़ती है । पुकारने पर वह बोलती भी नहीं और न नेत्र ही खोलती है । वह सदैव जड़वत् स्थिर बैठी हुई और अनिमेष देखती हुई ऐसी लगती है मानो मूर्ति ही बिठा दी गई हो । वह समझाने से और भी अधिक व्याकुल होती है और हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगती है । इसकी अवस्था जीते हुए भी मृत के समान हो रही है । जब वह होश में आती है, तो वियोग में रोकर सखियों के हृदय को भी करुणा से भर देती है । जब तक वह अचेत रहती है, तभी तक उसको सुख मिलता है ।

विशेष—यहाँ वियोग की निष्पत्ति चरम सीमा पर है । वियोग की प्रायः सभी दशाएँ इस छन्द में आ गई हैं ।

"कहाँ तुम्हारो..........परदेश ।"

अर्थ—यह पारसी थियेटर के कथोपकथन की शैली में ललिता और योगिन का संवाद है । ललिता योगिन से परिचय पूछती हुई कहती है, कि उसने योग क्यों धारण किया है । योगिन उत्तर देती है कि मेरे गुरु ने सिद्धि प्राप्त करने के लिये विरह का उपदेश दिया है । मेरे नेत्रों द्वारा वह प्रकट है । तब से मैंने सब छोड़ दिया है और देश-विदेश में घूम रही हूँ ।

"पचि मरत..........वियोगिन नारी ।"

अर्थ—यहाँ योगिन का कथन ललिता के प्रति है । वह वियोग की व्याख्या

मन की कासों पीर सुनाऊँ।
बकनों बृथा और पत खोनी सबै चबाई गाऊँ ॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊँ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रगट जनाऊँ ॥
रोम रोम प्रति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊँ।
बिना सुजान शिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊँ ॥
मरमिन सखिन वियोग दुखिन क्यों कहि निज दसा रोआऊँ।
'हरीचन्द' पिय मिलें तो पग परि गहि पदुका समझाऊँ ॥

[गाते-गाते बेसुध होकर गिरा चाहती है कि एक बिजली सी चमकती है और योगिन श्रीकृष्ण बन कर उठा कर गले लगाते हैं और नेपथ्य में बाजे बजते हैं]

ललिता : (बड़े आनन्द से) सखी बधाई है, लाखन बधाई है। ले होश में आ जा। देख तो कौन तुझे गोद में लिये हैं।

चन्द्रावली : (उन्माद की भाँति भगवान के गले में लपटकर)

पिय तोहि राखौंगी भुजन में बाँधि।
जान न दैहों तोहि पियारे धरौंगी हिय सों नाँधि ॥
बाहर गर लगाइ राखौंगी अन्तर करौंगी समाधि।
'हरीचन्द' छूटन नहिं पैहौ लाल चतुराई साधि ॥

पिय तोहि कैसे हिये राखौं छिपाय।
सुन्दर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय ॥
नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय।
हियरे में मनहूँ के अन्तर कैसे लेउँ लुकाय ॥
मेरो भाग रूप पिय तुमरो छीनत सौतें हाय।
'हरीचन्द' जीवन-धन मेरे छिपत न क्यों इत धाय ॥

पिय तुम और कहूँ जिन जाहु।
लेन देहु किन मों रंकिन को रूप सुधा रस लाहु ॥
जो-जो कहौ करौं सोइ सोई धरि जिय अमित उछाहु।
राखौं हिये लगाइ पियारे किन मन माहिं समाहु ॥

करती हुई कहती हैं कि योगी-यती साधना करके व्यर्थ ही प्राण गँवाती हैं। सच्ची योगिन वियोगिन स्त्री ही है। वह अपने चारों ओर विरह रूपी अग्नि की धूनी रमाती है और वंशी रूपी मुद्रा को कानों में लटकाये रहती है। वह आँसुओं की सेली गले में डालती है और शरीर पर धूल भभूत मलती है। उसकी उलझी हुई काली लटें ही योगी की काली जटाओं से समान हैं।

"गुरु विरह दियो..........नारी।"

अर्थ—योगिन कहती है कि हे व्रजबालाओं सुनो, गुरु ने मुझे विरह का उपदेश दिया है। प्रिय-वियोग के दुःख रूपी मृगछाया बिछाने तथा मन रूपी मनका की माला से प्रिय का नाम जपने को कहा है। वियोगिन की सभी चालें निराली होती हैं। वह प्रियतम में लगी हुई अपनी अचल समाधि को कभी भंग करना नहीं चाहती।

अलंकार—रूपक।

"यह है सुहाग..........नारी॥"

अर्थ—हे गोपियों! यही हमारे अचल सुहाग का स्वरूप हैं। तुम अपशकुन के चिन्ह समूह को कभी मत चढ़ाना अर्थात् उसे कदापि शरीर पर न लगने देना। सदा सौभाग्य-चिह्न सिन्दूर लगाकर, चोटी सँवार कर गूँथना, हाथ में चूड़ी पहनना, तथा ओठों को पानों से रचनाकर सदा प्रेम का प्याला पीना और उसी के नशे में डूबी रहना ही सच्ची प्रेम-योगिनी के लक्षण हैं।

अलंकार—रूपक।

"है पंथ हमारा..........नारी॥"

अर्थ—हे गोपियों! नयनों की इच्छा पर चलना ही हमारा ध्येय है। कुल, वेद तथा परलोक से अलग रहना ही हमारा कर्म है। शिवाजी के समान योगी को भी अपने योग की शिक्षा देना हमारा सिद्धान्त है। इस प्रकार के वियोग पर लाखों योग न्यौछावर है। वास्तव में वियोगिन स्त्री ही सच्ची योगिनी है।

"जोगिन रूप-सुधा की प्यासी॥"

अर्थ—चन्द्रावली योगिन के गायन से बहुत प्रभावित होती है। वह योगिन से पुनः गाने का अनुरोध करती है। योगिन मुस्कराकर गाना प्रारम्भ करती

अनुदिन सुन्दर बदन सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु ।
'हरीचन्द' पलकन की ओटैं छिनहु न नाथ दुराहु ॥
पिय तोहि कैसे बस करि राखौं ।
तुव दृग मैं दृग तुव हिय में निज हियरो केहि बिधि नाखौं ॥
कहा करौं का जतन बिचारौ बिनती केहि विधि भाखौं ।
'हरीचन्द' प्यासी जन मन की अधर-सुधा किमि चाखौं ॥

भगवान् : तौ प्यारी मैं तोहि छोड़ि कै कहाँ जाउँगो, तू तौ मेरी स्वरूप ही है। यह सब प्रेम की शिक्षा करिबे की मेरी लीला है।

ललिता : अहा ! इस समय जो मुझे आनन्द हुआ है उसका अनुभव और कौन कर सकता है ? जो आनन्द चन्द्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है। सच है युगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनन्द का अनुभव और किसको होता है।

चन्द्रावली : पर नाथ ऐसे निठुर क्यों हो ? अपनों को तुम कैसे दुखी देख सकते हो ? हा ! लाखों बातें सोची थी कि जब कभी पाऊंगी तो यह कहूंगी, यह पूछूंगी पर आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता ।

भगवान् : प्यारी । मैं निठुर नहीं हूँ। मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ। परन्तु मोहि निहचै है के हमारे प्रेमिन को हम सों हूँ हमारो विरह प्यारो है। ताही सों मैं हूँ बचाय जाऊँ हूँ। या निठुरता में जे प्रेमी हैं तिनको तो प्रेम और बढ़ै और जे कच्चे हैं तिनकी बात खुल जाय। सो प्यारी यह बात दुसरेन की हैं। तुमारो का, तुम और हम तो एक ही हैं। न तुम हम सौं जुदी हो न प्यारी जू सों हम। हम ने तो पहिले ही कही कै यह सब लीला है। (हाथ जोड़ कर) प्यारी छमा कहियौ हम तौ तुम्हारे सबन के जनम जनम के रिनियाँ हैं। तुम सो हम कभू उरिन होइवेई के नहीं। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

न्द्रावली : (घबड़ा कर दोनों हाथ छुड़ा कर आँसू भर के) बस-बस नाथ, बहुत भई, इतनी न सही जायगी। आपकी आँखों में

है। योगिन रूप-सुधा की प्यासी है। वह बिना प्रिय के वन-वन में घूम रही है। उसके मुख पर प्रियतम के वियोग में उदासीनता छाई हुई है। वह योग, धन-धाम और सारे कार्य को छोड़कर वन वासिनी हुई फिरती है। वह प्रियतम के रूप की उपासिका है और उनसे मिलने के लिये ही अलख-अलख रटा करती है। हे मनमोहन! तुम्हारे लिए मैं योगिन बनी और मैंने वन-वन छान डाला। मैंने अपने कोमल शरीर पर भस्म लगाई और योग का स्वाँग भरकर वन-वन छानती फिरी। मैं तुम्हारे दर्शन के लिये ही तुम्हारे गुण चारों ओर गाती फिरी और मार्ग में भी तुम्हारी ही प्रशंसा करती रही। अब तो दर्शन दीजिए। अब मैं बहुत ही परेशान हो चुकी हूँ।

"अलख गति जुगल पिया प्यारी की।"

अर्थ—ललिता योगिन और चन्द्रावली के आग्रह पर गाती है। प्रिय और प्यारी की अनोखी गति है। प्रेम करने वाली प्यारी तथा प्यारे श्रीकृष्ण का मर्म समझना बहुत कठिन है। कभी तो वे एक दूसरे पर बलिहारी जाते है और कभी परस्पर में मिलते हैं और बिछुरते हैं और कभी दूसरे से रूठ जाते हैं और पुनः हँसने लगते हैं। इन दोनों पर त्रिभुवन का प्रेम, मर्यादा, बुद्धि तथा सौन्दर्य न्यौछावर हैं।

"तू केहि चितवति चकित मृगी-सी।"

अर्थ—चन्द्रावली को योगिन के वेश में कृष्ण के होने की आशंका हो जाती है। वह उद्विग्न और भाव-विभोर हो जाती है। उसकी इस दशा को देखकर योगिन गाती है। तू आश्चर्यचकित होकर मृगी के समान किसको देखती है? तू किसे खोज रही है? तेरा क्या खो गया है? तू व्याकुल-सी क्यों है और मृगी-सी क्यों दिखाई दे रही है? तू अपने शरीर का ध्यान कर, देख तो अंचल उधर गिर रहा है। तू किस ध्यान में भूली-सी रहती है? तू कुछ उत्तर नहीं देती, स्तब्ध बैठी रहती है। क्या तूने मद-पान किया है अथवा रात्रि भर जगी है? तू चौंककर चारों ओर देख रही है और उमंग में आकर स्वप्न में भी प्यारे को देखा करती है। जिस प्रकार मृग-छौना अपने दल से छुटकर व्याकुल हो जाता है उसी प्रकार तू भी व्याकुल दीख रही है। तुझे न घर की लज्जा है और न बाहर की। इस प्रकार तू कुल की मर्यादा डिगा रही है।

आँसू देख कर मुझसे धीरज न धरा जायगा (गले लगा लेती है)

[विशाखा आती है]

विशाखा सखी ! बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा दई है के प्यारे सों कहौ दे चन्द्रावली की कुंज में सुखेन पधारो।

चन्द्रावली : (बड़े आनन्द से घबड़ा कर ललिता, विशाखा से) सखियो मैं तो तुम्हारे दिये पीतम पाये हैं। (हाथ जोड़ कर) तुमारो गुन जनम-जनम गाऊँगी।

विशाखा : सखी ! प्रीतम तेरो तू पीतम की, हम तो तेरी टहलनी हैं। यह सब तो तुम सबन को लीला है। या मैं. कौन बोलैइ और बोलै कहा जो कछू समझै तो बोलै—या प्रेम की तो अकथ कहानी है। तेरे प्रेम को परिलेख तो प्रेम की टकसाल होयगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ ही मैं न आवैगो। तू धन्य, प्रेम धन्य, या प्रेम के समझिये बारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़े सो धन्य। तो मैं और स्वामिनी मैं भेद नहीं है; ताहू पै तू रस की पोषक ठहरी। बस अब हमारी दोउन को यही बिनती है कै तुम दोऊ गलबाहीं दै कै विराजो और हम युगल जोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करैं।

[गलबाहीं देकर जुगल स्वरूप बैठते है]

दोनों : नीके निरखि निहारि नैन भरि नैनन को फल आजु लहौरी।
जुगल रूप छबि अमित माधुरी रूप सुधा-रस-सिंधु बहौरी॥
इनही सों अभिलाख लाख करि इक इनहीं को नित्हि चहौरी।
जो नर तनहि सफल कर चाहो इनही के पद कंज गहौरी॥
करम, ज्ञान, संसार-जाल तजि बरु बदनामी कोटि गहौरी।
इनहीं के रस मत्त मगन नित इनहीं के ह्वै जगत रहौगे॥
इनके बल जग जाल कोटि अघ तृन सम प्रम प्रभाव दहौरी।
इनहीं को सरबस करि जानो यहैं मनोरथ जिय उमहौरी॥

तुझे अपने प्रियतम से यदि इतना प्रगाढ़ प्रेम है, तो उनके संग-संग लगी क्यों नहीं डोलती ?

'पिय तोहि कैसे हिय राखौं छिपाया ?"

अर्थ—हे प्रिय ! तुम्हें किस प्रकार हृदय में छिपा लूं ? तुम्हारे सुन्दर रूप को सब देखते हैं, इससे मेरे मन में कसक होती है । मैं तुम्हें अपने नेत्रों की पुतली बनाकर नेत्रों में छिपा लूंगी । अपने हृदय में तुम्हें किस प्रकार छिपाऊँ ? तुम्हारा रूप ही मेरा भाग्य है, उसे सौत छीन रही रही है। हे प्राणनाथ ! तुम अन्यत्र कहीं न जाओ । मुझ निर्धन को अपनी रूप-सुधा का रस क्यों नहीं लेने देते ? तुम जो कुछ कहोगे मै उसे बड़े उत्साह के साथ करूंगी । प्यारे ! हृदय से लगाकर रखूंगी । मेरे मन में क्यों नही घुस जाते ? प्रतिदिन मेरे नेत्र रूपी चकोरों को अपना सुन्दर अमृतमय मुख क्यों नहीं दिखाते ? नाथ ! एक क्षण भी मेरी पलकों से अलग न रहो ।

"प्रिय तौहि कैसे बस करि राखौं ।"

अर्थ—हे प्रिय ! आपको किस तरह अपने वश में करूं ? तुम्हारे नेत्रों तथा हृदय में मैं अपने नेत्रों और हृदय को किस प्रकार मिला दूं ? मैं क्या करूं और कौन उपाय करूं और किस प्रकार प्रार्थना करूं ? मैं अधिक प्यासी हूं । मैं किस तरह से अधरामृत पी सकूंगी ।

"नीके निरखि निहारि नैन भरि,
नैनन को फल आजु लहौरी ।"

सन्दर्भ—चन्द्रावली कृष्ण से अनुनय करती है कि वे उससे कभी विलग न हों । इसी समय विशाखा आती है और वह ज्येष्ठा नायिका राधा का संदेश चन्द्रावली तथा उसके प्रियतम कृष्ण को सुनाती है । राधा ने कृष्ण को चन्द्रावली के कुंज में जाने की अनुमति दे दी है । विशाखा चन्द्रावली के प्रेम और महिमा का वर्णन करती है । चन्द्रावली और कृष्ण गलबाँही डालकर बैठते हैं । ललिता और विशाखा युगल छवि की वन्दना करती हैं ।

अर्थ—इनकी सुन्दर छवि आज अच्छी तरह से निरखकर अपने नेत्र सफल कर लो । दोनों की सुन्दरता और माधुर्य के अमृत का सागर बह रहा है ।

राधा-चन्द्रावली कृष्ण व्रज जमुना गिरिवर मुखहि कहौरी।
जनम जनम यह कठिन प्रेमव्रत "हरीचन्द' इकरस निबहौरी ।।

भगवान् : प्यारी ! और जो इच्छा होय सो कहौ, काहू सों कै जो तुम्हें प्यारी है सोई हमें हूँ प्यारो है।

चन्द्रावली : नाथ ! और कोई इच्छा नहीं, हमारी तो सब इच्छा की अवधि आपके दर्शन ही ताईं है तथापि भरत को यह वाक्य सफल होय।

परमारथ स्वारथ दोउ कहँ मेलि न सानैं।
जे आचारज होइँ धरम निज तेहि पहिचानैं ।।
वृन्दाबिपिन बिहार सदा सुख सों थिर होई।
जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिनु होइ न कोई ।।
जगजाल छाँड़ि अधिकार लहि कृष्ण चरित सबही कहै।
यह रतन-दीप हरि-प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै ।।

[फूलों की वृष्टि होती है, बाजे बजते हैं और जवनिका गिरती है]

।। इति परम फल नामक चतुर्थ अङ्क समाप्त ।।

इसमें अपने को प्रवाहित कर दो। इन्हीं से लाखों अभिलाषाओं के पूर्ण होने की की अभिलाषा करो और एक इन्हीं से मिलने की इच्छा करो। यदि अपने मानव-जीवन को सफल करना चाहते हो तो एकमात्र इन्हीं के चरणों की शरण ग्रहण करो। कर्म, ज्ञान और संसार के माया जाल को छोड़कर इस युगल-छवि के प्रेम में निमग्न हो जाओ और इनका प्रेम पाने के लिये संसार की करोड़ों बदनामियों को सहन करने को तैयार रहो। इनके प्रेम में उन्मत्त होकर इन्हीं की बन जाओ और इन्हीं के प्रेम के बल पर संसार के कोटियों पापों को तृण के समान नष्ट कर दो। इन्हीं को सर्वस्व जानकर यही मनोरथ अपने हृदय में रखो और अपने मुख से सदैव राधा, चन्द्रावली, कृष्ण, व्रजयमुना और गिरिवर आदि उच्चारण करो। इस कठिन प्रेम-व्रत का जन्मजन्मान्तर निर्वाह करने का सतत प्रयास करो।

"परमारथ स्वारथ दोउ.......जग रहै।"

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण श्रीचन्द्रावली की अभिलाषा जानना चाहते हैं। वह कृष्ण के दर्शन होते रहने की कामना करती है। अन्त में चन्द्रावली आशीर्वाद के रूप में भरतवाक्य कहती है—

अर्थ—इस संसार के मनुष्य स्वार्थ और परमार्थ को एक दृष्टि से न देखें। जो इन दोनों को पृथक्-पृथक् करके समझता है वही भली प्रकार अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। वृन्दावन का विहार सदा सुख से पूर्ण हो। वल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी होकर कोई भी मनुष्य भक्ति से हीन न रह सके। संसार के बन्धनों से मुक्त होकर अधिकाधिक रूप से सभी श्रीकृष्ण के चरित्र का गुण-गान कर सकें और कृष्ण के प्रति अनुराग रूपी वह रत्नद्वीप सदैव प्रज्ज्वलित रहे और समस्त जगत को प्रकाशित करता रहे।

भारत वाक्य

नाटक के अन्त में कोई पात्र आशीर्वाद के रूप में कुछ शब्द कहता है, इसे ही भरत वाक्य कहते हैं। भरत मुनि ने नाटक की समाप्ति पर सार्वजनिक हित तथा मंगल-कामना की दृष्टि से नाटक के अन्तिम पात्र से स्तुति या आशीर्वाद पूर्ण शब्द कहलाने का विधान रखा है।

आलोचनात्मक प्रश्नोत्तर

कथावस्तु

प्रश्न १—चन्द्रावली नाटिका की कथावस्तु संक्षेप में लिखकर उसकी सामान्य विशेषताओं का निरूपण कीजिए ।

उत्तर—कथावस्तु

'चन्द्रावली' की कथावस्तु चार अंकों में गठित है। समस्त कथानक का संगठन प्रेम, विरह और मिलन में हुआ है। प्रथम अंक से पहले विष्कम्भक में नारद श्री शुकदेव को चन्द्रावली के प्रेम की सूचना देते हैं। चन्द्रावली कृष्ण से प्रेम करती है और कृष्ण भी उस पर अनुरक्त हैं। प्रथम अंक में चन्द्रावली और ललिता की बात-चीत और दूसरे अंक में चन्द्रावली के प्रलाप से उसके प्रेम की उत्कंठा प्रकट होती है। तीसरे अंक में सखियाँ चन्द्रावली को धैर्य बँधाती हैं, और उसे कृष्ण से मिलाने का प्रयत्न करने का आश्वासन देती हैं। चौथे अंक में कृष्ण योगिन के वेश में आते हैं और साक्षात् होकर चन्द्रावली को दर्शन देते हैं। कृष्ण और चन्द्रावली गलबाहीं डालकर बैठते हैं। सखियाँ युगल-मूर्ति का अभिनन्दन करती हैं।

'चन्द्रावली' के कथानक का प्रारम्भ करने से पूर्व भारतेन्दु जी उसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इसमें हरि उपासना, भक्ति, वैराग्य, रसिकता आदि सभी कुछ है :—

> हरि उपासना भक्ति वैराग रसिकता ज्ञान ।
> सोधैं जग-जन मानि या चन्द्रावलिहि प्रमान ॥

'समर्पण' और 'आशीर्वाद पाठ' में सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि 'चन्द्रावली' उनकी भक्ति-भावना का मूर्त्त रूप है—

"..............इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है।"

\+ \+ \+

नेति नेति तत्-शब्द प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करो कल्यान॥

'प्रस्तावना' में सूत्रधार और पारिपार्श्वक के वार्तालाप से भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। 'प्रस्तावना' के अन्त में शुकदेव रंगमंच पर आते हैं। सूत्रधार उनके सौन्दर्य का वर्णन करता है।

विष्कम्भक

'प्रस्तावना' के पश्चात् 'विष्कम्भक' में शुकदेव और नारद के वार्तालाप में गोपियों और गोपियों में भी चन्द्रावली के अनन्य प्रेम का परिचय मिलता है। रंगमंच पर शुकदेव गोपियों के विलक्षण और अकथनीय प्रेम में निमग्न हो जाते हैं। इसी समय वीणा का स्वर सुनाई पड़ता है और देवर्षि नारद आते हैं। शुकदेव उनके सौन्दर्य, वेश-विन्यास, प्रेम और भक्ति-भावना का वर्णन करते हैं। नारद चन्द्रावली की प्रेम-अनन्यता का वर्णन करते हुए शुकदेव से कहते हैं—

"........सब गोपियों में भी चन्द्रावली के प्रेम की चर्चा आजकल ब्रज के डगर-डगर में फैली हुई है। अहा! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता, पिता भाई-बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भय है, तथापि श्रीकृष्ण के जल में दूध की भाँति मिल रही हैं।"

पहला अंक

कथानक का प्रारम्भ वृन्दावन से होता है। चन्द्रावली और ललिता में स्नेहालाप होता है। गिरिराज दूर से दिखाई दे रहा है। चन्द्रावली कृष्ण के प्रेम-वियोग में विह्वल हो रही है, किन्तु वह अपने प्रेम के सखी ललिता से छिपाना चाहती है। ललिता के बहुत आग्रह करने तथा शपथ दिलाने पर चन्द्रावली अपने प्रेम का रहस्य प्रकट कर देती है। ललिता चन्द्रावली के प्रेम की प्रशंसा करती हुई कहती है—

"........संसार में जितना भी प्रेम होता है, कुछ इच्छा लेकर होता है

और सबलोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं, पर उसके विरुद्ध तू बिना किसी इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख से सुख मानती है। यही तेरी चाल संसार से निराली है। इसीलिये मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मण्डल को पवित्र करने वाली है।"

ललिता और चन्द्रावली का यह स्नेहालाप चल रहा था, इसी समय दासी आकर सूचना देती है कि चन्द्रावली सवेरे से अब तक घर नहीं गई। उसकी माता खीझ रही है। चन्द्रावली ललिता और दासी के साथ चल देती है।

दूसरा अंक

दूसरे अंक की कथावस्तु केले के बन में घटित होती है। प्रथम अंक में चन्द्रावली के अनन्य प्रेम-वियोग से दर्शक परिचित हो जाता है। दूसरे अंक की यवनिका उठते ही चन्द्रावली वियोगिनी के रूप में दिखाई पड़ती है। संध्या का समय है, कुछ बादल छाये हुए हैं। चन्द्रावली एक वृक्ष के नीचे विरह-विह्वल होकर प्रलाप करती है। उसके हृदय की प्रेम-व्यथा को कौन सुन समझ सकता है? वह कहे तो किससे कहे—

जग जानत कौन है प्रेम बिथा,
केहिसौं चर्चा या वियोग की कीजिये ।।

क्योंकि कोई भी तो उसकी हृदय की व्यथा को जानने वाला नहीं है। उसके प्रियतम की यदि प्रीति तोड़नी ही थी, तो उन्होंने पहले अपना कर उसे बदनाम क्यों किया? इतना तो वह भी नहीं सताते, जो पहले सुख देते हैं। फिर उसके प्रियतम ने पहले कौन-सा सुख दिया, जिसके बदले वह इस प्रकार निर्मोही बनकर सता रहा है—

सुख कौन सो प्यारे दियो पहले,
जिहि के बदले यों सताय रहे।

चन्द्रावली प्रियतम के निर्मोहीपन पर ताना भी देती हैं—

कितकों ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।

× × ×

पहले अपनाइ बढ़ाइ के नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ ।

चन्द्रावली अपनी आँखों को दोष देती है, क्योंकि वही तो सबसे पहले दौड़कर मिली—

धाइकै आगे मिली पहिले तुम,
कौन सों पूछिकै सो मोहि माखौ ।

× × ×

क्यों अब रोइके प्रान तजौ,
अपने किए को फल क्यों नहिं चाखौ ।।

चन्द्रावली इस प्रकार विरह में प्रलाप कर रही थी, इसी समय उसकी सखियाँ बनदेवी संध्या और वर्षा आ जाती है । चन्द्रावली प्रियतम कृष्ण के ध्यान में निमग्न है । सखियों द्वारा पूछने पर वह कहती है—

"हाँ-हाँ अरी क्यों चिल्लाय है ? चोर भाग जायगो ।"

बनदेवी सीटी बजाती है । जिसे सुनकर चन्द्रावली कहती है—

"देखो दुष्ट को मेरा तो हाथ छुड़ाकर भाग गया । अब न जाने कहाँ खड़ा बंशी बजा रहा है । अरे छलिया कहाँ छिपा है ?"

इसके पश्चात् चन्द्रावली वन के वृक्षों, कदम्ब, निम्ब, वकुल-तमाल, कुंज, लता, तृण, यमुना, खग, मृग और गोवर्द्धन से कृष्ण का पता पूछती है । वह विरह में उन्माद की दशा को पहुँच जाती है । सखी वर्षा का नाम सुनकर वर्षा की स्मृति से उसका वियोग और अधिक उद्दीप्त हो जाता है । वह पवन, भँवर, हंस, सारस, कोकिल, पपीहा, भानु आदि से आर्त्त होकर कहती है, कि वे उसके प्रियतम को उससे मिला दें । किन्तु कहीं से कुछ उत्तर न पाकर वह अति विह्वल होकर कहती है—

कोउ नहीं उत्तर देत भए सबही निरमोही ।
प्रान पियारे अब बोलौ कहाँ खोजौं तोही ।।

चन्द्रावली उन्माद की अवस्था में प्रलाप करती हुई प्रियतम का अन्वेषण करती है ।

दूसरे अङ्क के अन्तर्गत अंकावतार

संध्या चन्द्रावली का प्रेम प्रत्र लेकर कृष्ण के पास जाती है। गाय उसका पीछा करती है। उसकी चोली से पत्र गिर जाता है जिसे चंपकलता उठा लेती है, वह पहचान लेती है कि यह पत्र चन्द्रावली का ही है। वह पत्र को स्वयं कृष्ण को पहुँचाने का निश्चय करती है। उसकी सारी बातें एक वृद्धा सुन लेती है। जो कहती है—'हाँ, तू सब करेगी ।'' पहले वह उस वृद्धा को समझाने का निश्चय करती है, क्योंकि उसे भय है कि वह कहीं सारा रहस्य प्रकट न कर दे। इस प्रकार पत्र से चन्द्रावली के प्रेम का भेद प्रकट हो जाता है।

तीसरा अङ्क

इस अंक का कथानक तालाब के किनारे के एक बगीचे का है। चन्द्रकान्ता, बल्लभा, श्यामला, भामा आदि सखियाँ झूला झूल रही हैं और चन्द्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी आदि एक स्थल पर बैठी हुई हैं।

वर्षा की सुहावनी प्रकृति और झूला चन्द्रावली के वियोग को अधिक उद्दीप्त कर देता है। चन्द्रावली विरह-विह्वल होकर प्रलाप करती है। उसकी अवस्था उन्माद-दशा को पहुँच जाती हैं। सखियाँ चन्द्रावली से कृष्ण को मिलाने के प्रयास में लग जाती हैं। माधवी 'प्यारी जू' को मनाने का उत्तर-दायित्व लेती है; विलासिनी चन्द्रावली के घर वालों को समझाने और काम-मंजरी कृष्ण को मानने का जिम्मा लेती है। सभी अपने-अपने प्रयास में लग जाती हैं।

चौथा अङ्क

चौथे अंक का कथानक चन्द्रावली की बैठक में घटित होता है। कृष्ण योगिन के रूप में आते हैं। चन्द्रावली गृह में नहीं। ललिता यमुना के सौन्दर्य का वर्णन करती है। इसी समय चन्द्रावली आ जाती है। योगिन भी दबे पाँव से आकर एक कोने में खड़ी हो जाती है, योगिन के वेश में कृष्ण चन्द्रावली के अनन्य प्रेम को देखकर गद्गद् हो जाते हैं। योगिन का गाना चन्द्रावली के हृदय को बेध देता है। योगिन के आग्रह पर चन्द्रावली भी गाती है। गाते-गाते वह बेसुध होकर गिरने लगती है कि योगिन श्रीकृष्ण बनकर उसे हृदय से लगा लेते हैं। चन्द्रावली कृष्ण के गले से लिपटकर कहती है—

"पिय तोहि राखौंगी भुजन में बाँधि।
जान न देहौं तोहि पियारे धारौंगी हिय सों बाँधि॥"

इसी समय विशाखा आकर सूचना देती है कि स्वामिनी राधा ने कृष्ण को चन्द्रावली से मिलने की आज्ञा दे दी है। कृष्ण और चन्द्रावली गलबाँही डाल कर बैठते हैं। ललिता और विशाखा युगल-स्वरूप की वन्दना करती हैं। कथानक का अन्त निम्न 'भरत वाक्य' से होता है—

परमारथ स्वारथ दोऊ कहँ संग मेलि न सानैं।
जे आचारज होईं धरम निज तेहि पहिचानैं॥
बृन्दा विपिन विहार सदा सुख सों थिर होई।
जन वल्लभी कहाय भक्ति बिनु होइ न कोई॥
जगजाल छाँड़ि अधिकार लहि कृष्ण चरित सबही कहै।
यह रत्न-दीप हरि-प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै॥

प्रश्न २—'चन्द्रावली नाटिका' की कथावस्तु का सम्यक् रूप से विश्लेषण कीजिए।

'चन्द्रावली नाटिका' में भारतेन्दु जी का उद्देश्य वल्लभ-सम्प्रदाय को पुष्टि-मार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति का निरूपण करना था। सारा कथानक इसी उद्देश्य को लेकर पल्लवित हुआ है।

कथावस्तु

कथानक का प्रारम्भ शुकदेव से नारद द्वारा चन्द्रावली के कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और भक्ति की प्रशंसा से होता है। कृष्ण का भी चन्द्रावली से प्रेम है, किन्तु वे व्रजस्वामिनी राधा के संकोच के कारण चन्द्रावली से मिल नहीं पाते। कृष्ण के वियोग में चन्द्रावली विक्षिप्तावस्था को पहुँच जाती है। वह प्रलाप करती है। उसकी सखियाँ माधवी, काममंजरी और विलासिनी उसे कृष्ण से मिलाने के प्रयत्न में लग जाती हैं। अन्त में कृष्ण योगिन के वेश में चन्द्रावली के गृह में आते हैं और प्रकट होकर दर्शन देते हैं। ब्रज-स्वामिनी राधा भी कृष्ण को चन्द्रावली से मिलने की अनुमति दे देती हैं। चन्द्रावली

और कृष्ण गलबाँहीं डालकर बैठते हैं और सखियाँ युगल-मूर्ति का अभिनन्दन करती हैं। वहो उद्देश्य की पूर्ति के साथ में कथानक समाप्त हो जाता है।

वस्तु-विन्यास

'चन्द्रावली' के कथानक का वस्तु-विन्यास प्रेम-नाटिका के नियमों के आधार पर गठित हुआ है। इसमें चार अंक हैं और दूसरे अंक के अन्तर्गत अङ्कावतार है, इसके नायक श्रीकृष्ण धीर-ललित नायक हैं। नायिका चन्द्रावली गायन-प्रिय और अनुरागवती है। कृष्ण और चन्द्रावली के मिलन में ब्रज-स्वामिनी राधा का संकोच बाधक हैं, किन्तु अन्त में वे मिलन की अनुमति दे देती हैं। नाटिका के नियमों के अनुसार इसमें प्रायः सभी पात्र स्त्रियाँ हैं। कथानक के प्रारम्भ में विष्कम्भक के अन्तर्गत नारद और शुकदेव जी सामने आते हैं, किन्तु कथानक के अन्त तक उनकी स्थिति नहीं रहती। कथानक के अन्त में कृष्ण भी योगिन के वेश में आते हैं। शृङ्गार के वियोग-पक्ष का प्रस्तुत नाटिका में पूर्ण रूप से परिपाक हुआ है।

कथानक का शास्त्रीय विवेचन

'चन्द्रावली' नाटिका का कथानक नाटिका के शास्त्रीय नियमों के अनुसार गठित हुआ है। प्रारम्भ में प्रस्तावना, नांदीपाठ और अन्त में भरतवाक्य है। प्रारम्भ में विष्कम्भक शास्त्रीय दृष्टि से दोष है। विष्कम्भक में जहाँ नारद शुकदेव को चन्द्रावली के जगत को पावन करने वाले प्रेम की सूचना देते हैं, वहाँ पर बीज अर्थ-प्रकृति है। 'बिन्दु' अर्थ प्रकृति प्रथम अंक में चन्द्रावली और ललिता के वार्तालाप और दूसरे अंक में चन्द्रावली के प्रलाप में है। सखियों के झूलने के प्रसंग में प्रकरी अर्थ प्रकृति है। चौथे अंक में योगिन के प्रवेश से कार्य अर्थ-प्रकृति प्रारम्भ होती है।

कार्यावस्था और संधि

प्रथम अंक में चन्द्रावली और ललिता के वार्तालाप से प्रारम्भावस्था और मुखसंधि है। कृष्ण के पास पत्र भेजने के प्रकरण में प्रयत्नावस्था और प्रतिमुख सन्धि है, तीसरे अंक में जहाँ सखियाँ चन्द्रावली को धैर्य बँधाती हैं; प्राप्त्याशा अवस्था और गर्भसन्धि है। माधवी, विलासिनी और काममंजरी अपने प्रयत्न से चन्द्रावली और कृष्ण का संयोग कराने की प्रतिज्ञा करती हैं।

यहाँ नियताप्ति अवस्था के साथ विमर्श-संधि का हलका-सा पुट मिल जाता है। चौथे अंक में कृष्ण योगिन के वेश में आते हैं। चन्द्रावली मूर्छित हो जाती है। कृष्ण प्रकट होकर चन्द्रावली को गोद में सँभाल लेते हैं। यही युगल-छवि झाँकी के साथ फलागम अवस्था और निर्वहण संधि है।

पात्र और चरित्र-चित्रण

'चन्द्रावली' नाटिका के प्रायः सभी पात्र स्त्रियाँ हैं। चन्द्रावली नायिका है। कृष्ण का प्रवेश योगिन से वेश में ही होता है। ललिता, बनदेवी, संध्या, वर्षा, चम्पकलता, कामिनी, माधुरी, काममंजरी, मालती, विलासिनी आदि चन्द्रावली की सखियाँ है। चन्द्रावली का चित्रण कनिष्ठा नायिका के रूप में है। राधा की अनुमति से ही कृष्ण से चन्द्रावली मिल पाती है। सभी पात्रों की भरमार कथानक के प्रवाह को अविरुद्ध करती है। पात्रों की स्थिति का निर्वाह भी प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सफलतापूर्वक नहीं हो पाया है। कथानक के आरम्भ में ललिता का विशेष महत्व दिखाई पड़ता है; किन्तु आगे चलकर नाटककार ललिता को छोड़कर कृष्ण और चन्द्रावली के मिलन में काममंजरी विशाखा और माधवी को विशेष महत्व प्रदान करता है। विशाखा, काममंजरी, तथा मालती बीच में ही छूट जाती हैं; अन्त में ललिता पुनः आ जाती है।

चन्द्रावली के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र में विकास नहीं है। कृष्ण, नारद और शुकदेव का उल्लेख मात्र ही है। सखियों के चरित्र में भी कोई उभार नहीं है। चन्द्रावली के चरित्र की विशेषताओं का उद्घाटन भारतेन्दु जी ने मनोवैज्ञानिक रूप में किया है। उसके प्रेम और वियोग के प्रलाप भी सरलता और उत्सुकता की सृष्टि करते हैं। चन्द्रावली के चरित्र का महत्व दोहरा है। प्रथम तो वह एक प्रेम-विह्वला-साधारण नारी है। वह साधारण नारी की तरह ही प्रियतम-वियोग के उद्गारों को अभिव्यक्त करती है। उसके चरित्र का दूसरा रूप 'पुष्टिमार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति' का प्रतीक बनकर सामने आता है। चन्द्रावली इसी भक्ति का आदर्श है। चन्द्रावली के चरित्र के इन दोनों रूपों का चित्रण बड़ी सरलता और स्वाभाविकता से हुआ है।

कथोपकथन

'चन्द्रावली' में कथा का प्रवाह कथोपकथन के द्वारा ही होता है। प्रारम्भ में शुकदेव और नारद का कथोपकथन कथा का रहस्य खोल देता है। यह कथोपकथन कार्य-व्यापार को बढ़ाने में सहायक है। चन्द्रावली और ललिता के कथोपकथन में चन्द्रावली की मनोदशा का चित्र सजीव हो जाता है। स्वगत-कथन चन्द्रावली की मनोदशा का परिचय कराने में सफल है। इन कथोपकथनों में रंगमंच की दृष्टि से दोष अवश्य है, किन्तु स्वाभाविकता और सरसता की दृष्टि में उत्तम है। जहाँ पद्य में कथोपकथन है वहाँ अस्वाभाविकता आ गई है। ऐसे स्थलों पर पारसी थियेटरों का प्रभाव स्पष्ट है। कहीं-कहीं पर भावुकता का आधिक्य भी कथोपकथनों में अस्वाभाविकता उत्पन्न कर देता है। 'चन्द्रावली' के कथोपकथनों के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि वे सरलता और सरसता की दृष्टि से सफल हैं।

रस

'चन्द्रावली' नाटिका में शृंगार रस की प्रमुखता है। कृष्ण आलम्बन और चन्द्रावली आश्रय हैं। इस प्रेम-नाटिका का कथानक प्रेम, विरह और मिलन में ही पल्लवित हुआ है।

'चन्द्रावली' का विरह-वर्णन प्रवास विरह के अन्तर्गत है। वियोग से प्रथम चन्द्रावली और कृष्ण का मिलन हो चुका था, तभी चन्द्रावली कहती है—

कितको ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।

× × ×

पहिले अपनाय बढ़ाय कै नेह,
न रुसिवे में अब लाजत हौ।

विरह का बड़ा ही मार्मिक वर्णन चन्द्रावली में हुआ है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा और मरण की दशाओं का मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण चित्रण चन्द्रावली में हुआ है। चन्द्रावली का प्रलाप अत्यन्त हृदय-द्रावक है। सारी नाटिका ही चन्द्रावली के प्रलापों से भरी हुई है। प्रकृति चन्द्रावली के प्रेम-विरह को उद्दीप्त कर देती है।

चन्द्रावली को काले बादल कृष्ण की, इन्द्र धनुष बनमाली, बगुले मोतियों की माला और कोयल की कूक मुरली की स्मृति करा देती है। विरह-विह्वलता से चन्द्रावली जड़ और चेतन का अन्तर भूल जाती है। वह 'पौन', 'भँवर', 'हंस', 'सारस', 'कोकिल', 'पपीहा' आदि से कृष्ण का मिलन कराने के लिए विनय करती है। वह कदम्ब, अम्ब और निम्ब से प्रियतम का पता पूछती हुई कहती है—

अहो अहो बन के रूख कहूँ देख्यौ पिय प्यारो।
मेरा हाथ छुड़ाइ कहौ वह कितै सिधारो॥
अहो कदम्ब अहो अम्ब-निम्ब अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यौ कहुँ मनमोहन सुन्दर नंदलाला॥

'चन्द्रावली' के विरह का दुहरा महत्व है। एक ओर जहाँ यह हिन्दी साहित्य के विरह-वर्णनों में उच्च स्थान रखता है, वहाँ पुष्टमार्गीय भक्ति-भावना का प्रतीक है। समस्त कथनानक में इसी विरह-भक्ति का प्रतिपादन हुआ है।

प्रकृति

'चन्द्रावली' के कथानक का पल्लवन प्रकृति के ही अंक में होता है। किन्तु सारा प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के ही रूप में है। यमुना-वर्णन पर भी रीतिकाल का स्पष्ट प्रभाव है। अलंकारों की भीड़ यमुना के प्राकृतिक सौन्दर्य को दबा देती है। विप्रलंभ-शृंगार को उद्दीप्त करने के लिए जहाँ प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया गया है, वहाँ पर स्वाभाविकता आ गई है।

भक्ति भावना

भारतेन्दु जी 'तदीयनामांकित वैष्णव सम्प्रदाय' और 'प्रेम-लक्षणा' भक्ति के उपासक थे। उन्होंने अपने भक्ति-सिद्धान्तों के निरूपण के लिए ही चन्द्रावली की रचना की। वल्लभ-सम्प्रदाय की पुष्टि-मार्गीय प्रेम-लक्षणा रागानुगा भक्ति की कामरूपा भक्ति के अन्तर्गत युगल-मूर्ति की उपासना को महत्व दिया गया है। 'चन्द्रावली' के कथानक का अंत युगल-छवि की झाँकी में होता है। भारतेंदु जी 'प्रारम्भ' और 'नांदीपाठ' में अपने उद्देश्य की घोषणा करते हुए कहते हैं—

काव्य सरस सिंगार के दोउ दल कविता नेम।
जग-जन कैं ईस सों कहियतु जेहि पर प्रेम ॥
हरि-उपासना भक्ति वैराग रसिकता ज्ञान।
सोधै जग-जन मानि या चन्द्रावलिहि प्रमान ॥

× × ×

नेति-नेति तत्-शब्द प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करो कल्यान ॥

'चन्द्रावली' का प्रेम लौकिक धरातल से उठाकर आध्यात्मिक धरातल तक ले जाने वाला है। पुष्टिमार्गीय प्रेम-लक्षणा रागानुगा भक्ति का पूर्ण रूप में प्रतिपादन प्रस्तुत नाटिका में हो जाता है। कृष्ण और चन्द्रावली गलबाहीं डाले विराजमान हैं। ललिता और विशाखा उनकी वन्दना करती हैं—

युगल रूप छबि अमित माधुरी, रूप सुधा रस-सिन्धु बहोरी।
इनहीं से अभिलाषा करि, इक इनहीं को नित्य चहोरी ॥
जौ नर-तनहिं सफल करि चाहौ, इनहिं के पद-कंज गहोरी।
राधा चन्द्रावली कृष्ण ब्रज-जमुना-गिरिवर मुखहिं कहोरी ॥
जनम-जनम यह कहनि प्रेम ब्रत 'हरीचन्द्र' इक रस निबहोरी ॥

इस युगल मूर्ति के दर्शन से मोक्ष और परमानन्द की प्राप्ति का वर्णन निम्न प्रकार है—

"हमारी तौ सब इच्छाओं की अवधि आपके दर्शन ही ताईं है।"

भाषा-संवाद

'चन्द्रावली' प्रेम-नाटिका है। अतः विषय-वस्तु के अनुकूल भाषा और बोली में भावुकता और कवित्व की प्रधानता हो जाना स्वाभाविक ही है। खड़ी बोली के बीच-बीच में ब्रजभाषा का प्रयोग अस्वाभाविकता उत्पन्न करता है। चन्द्रावली कभी शुद्ध खड़ी बोली बोलती है और थोड़ी देर पश्चात् ही ब्रजभाषा में बोलने लगती है। निम्न उदाहरणों में देखिये—

"प्यारे! देखो ये सब हँसतो हैं—तो हँसे तुम आओ, कहाँ वन में छिपे हो? तुम मुँह दिखलाओ, इनको हँसने दो।"

× × ×

"अरी सखियो मोहि छमा करियो, अरी देखो तुम मेरे पास आई और हमने तुमारो कछू सिस्टाचार न कियौ।"

अभिनयात्मक तत्वों का अभाव

'चन्द्रावली' नाटिका का भाषा सरल और स्वाभाविक है। लोकोक्तियों, मुहावरों और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उसे नाटकीयता प्रदान करता है। अतः भाषा की दृष्टि से चन्द्रावली नाटिका निर्दोष है। कथोपकथन इतने लम्बे हैं कि दर्शकों को उकता देने वाले हैं। चन्द्रावली के प्रलाप एवं स्वगत-कथन बहुत लम्बे हो गये हैं। पद्य-बद्ध कथोपकथन भी रंगमञ्च की दृष्टि से दोष-पूर्ण हैं। कवितामों और गीतों की भरमार भी रङ्गमञ्च की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं। 'चन्द्रावली' मे दृश्यों का बाहुल्य है। साथ ही सखी पात्रों की संख्या इतनी अधिक है कि उनको रङ्गमञ्च पर सँभालना सरल नहीं है। पात्रों की स्थिति भी प्रारम्भ से लेकर अन्त तक नहीं रहती। पहले अंक में ललिता और चन्द्रावली का वार्त्तालाप नाटकीयता से परिपूर्ण है, किन्तु दूसरे अंक में संध्या, वनदेवी और वर्षा की उपस्थिति किसी उद्देश्य को पूरा नहीं करती। तीसरे अंक में इन सखियों का कोई पता नहीं चलता और काममंजरी, विलासिनी, माधवी आदि नई सखियाँ ही सामने आती हैं। कथानक में शैथिल्य भी इतना है कि दर्शकों के आनन्द की हानि होती है। 'चन्द्रावली' में जिज्ञासा तत्व नहीं रहने पाता। कृष्ण को योगिन-वेश में देखकर फल का अनुमान हो जाता है।

निष्कर्ष

भारतेन्दु ने चन्द्रावली की रचना शास्त्रीय कसौटी पर की किन्तु उन्होंने समयानुकूल पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र के स्वस्थ तत्वों को भी ग्रहण किया। रंगमंच की दृष्टि से 'चन्द्रावली' में दोष होने पर भी वह प्रेम-नाटिका की दृष्टि से सफल है। नाटककार रस-संचार और कृष्ण-भक्ति का प्रतिपादन करने में सफल हुआ है। 'चन्द्रावली' का कथानक प्रेम, विरह एवं मिलन में गठित हुआ है। वस्तु-संविधान में प्राचीन एवं अर्वाचीन नाट्य-शैलियों का सुन्दर सामंजस्य है। 'चन्द्रावली' भारतेन्दु जी के प्रेम तथा भक्ति सम्बन्धी विचारों का दर्पण एवं उनके धार्मिक जीवन की प्रतिच्छाया है।

प्रश्न ३—नाटिका के लक्षण बतलाते हुए उनकी कसौटी पर 'चन्द्रावली नाटिका' को कसिये और सिद्ध कीजिए कि चन्द्रावली एक सफल प्रेम नाटिका है।

अथवा

प्रश्न ४—नाट्यकला के शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से 'चन्द्रावली' के कथानक की विवेचना कीजिये।

अथवा

प्रश्न ५—'चन्द्रावली नाटिका' के शिल्प-सौन्दर्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—'चन्द्रावली नाटिका' के कथानक की नाटकीय उपयोगिता के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७—"भारतेन्दु को केवल नाटक के शास्त्रीय विधान का ही ज्ञान नहीं था; अपितु वे नाटकीय विधान के पूरे पंडित थे"—इस कथन के आधार पर चन्द्रावली नाटिका की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८—"चन्द्रावली में नाट्य-शास्त्र में बतलाए हुए नाटिका के समस्त लक्षण प्राप्त होते हैं।"—इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—'चन्द्रावली' भारतेन्दु जी की सफल प्रेम-नाटिका है। इसमें नाट्य शास्त्र में बतलाये गये नाटिका के समस्त लक्षणों का बड़ी सफलता से निर्वाह हुआ है। 'चन्द्रावली नाटिका' की प्रतिपाद्य-विषयवस्तु नाटककार की स्वयं की वैष्णवीय भक्ति ही है। प्रथम अंक में चन्द्रावली और उसकी सखी ललिता के वार्त्तालाप में चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति प्रेम अभिव्यक्त होता है। दूसरे अंक में चन्द्रावली की वियोग-व्यथा का विकास होता है। वह वियोगिनी के वेश में एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई है। संध्या का समय है। बादल छाये हुए हैं। वनदेवी, संध्या, वर्षा आदि उसकी सखियाँ आ जाती हैं। चन्द्रावली की वियोग-व्यथा, उन्माद और प्रलाप की अवस्था को पहुँच जाती है। तीसरे अंक में कामिनी, माधवी, चंपकलता आदि सखियाँ चन्द्रावली के पास दिखाई

पड़ती हैं। वे कृष्ण और चन्द्रावली का मिलन कराने के प्रयास में लग जाती हैं। चतुर्थ अंक श्रीकृष्ण योगिन के वेश में चन्द्रावली की बैठक में आते हैं। वे प्रेम विह्वल चन्द्रावली को देखकर द्रवित हो जाते हैं। चन्द्रावली को योगिन वेश में श्रीकृष्ण के होने की आशंका हो जाती है। वह उनकी ओर आकर्षित होती है और गाती हुई बेहोश हो जाती है। श्रीकृष्ण चन्द्रावली को अपने अंक में ले लेते हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् हो जाते हैं। दोनों गलबाँही डालकर बैठते हैं। विशाखा और ललिता युगल छवि की वन्दना करती हैं। यहीं 'भरत वाक्य' के साथ कथानक समाप्त होता है।

कथानक की नाटकीय उपयोगिता

कथानक की नाटकीय उपयोगिता के लिए आवश्यक है कि उसका अभिनय तीन चार घन्टे में हो सके। आधिकारिक और प्रासंगिक कथाएँ एक-दूसरे से सामंजस्य स्थापित करती हुई कथानक में शिथिलता न आने दें। कथा में सानुबन्ध योजना और क्रमिक उतार चढ़ाव हो। नाटकीय उपयोगिता के लिए देश-काल का निर्वाह, कथानक की लोक प्रसिद्धि, छोटे-छोटे कथोपकथन और रँगमंचीयता आवश्यक है। 'चन्द्रावली' के स्वगत कथन कुछेक स्थलो पर आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गये हैं। ये लम्बे स्वगत कथन नाटकीय उपयोगिता की दृष्टि से दोष-पूर्ण हैं। इस नाटिका का उद्देश्य लौकिक न होकर अलौकिक है। दर्शक कुछ समय के लिए आध्यात्मिक प्रेम में अपने को भूल जाता है, परन्तु चन्द्रावली का प्रेम यथार्थ जगत् से होकर अलौकिकता की ओर गया है। घटनाओं का संघटन इतना स्वाभाविक है कि दर्शक उन पर सहज ही विश्वास कर लेता है। कथानक का अन्त इतना स्वाभाविक हुआ है कि दर्शक के हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। कथानक का अन्त होते-होते घटनावली पूर्णता को पहुँच जाती है और कथानक की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। भरतवाक्य कथानक के उद्देश्य, आदर्श और उपयोगिता को पूर्णरूप से स्पष्ट कर देता है :—

"परमारथ स्वारथ दोउ कहँ संग मेलि न सानै।
जे आचारज होई धरम निज तेहि पहिचानै।।

वृन्दा-विपिन-बिहार सदा सुख सों फिर होई।
जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिन रहै न कोई ।।
जग-जाल छाँड़ि अधिकार लहि कृष्ण चरित सबहीं कहै।
यह रत्न-दीप हरि प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै ।।

नाट्यकला की कसौटी पर चन्द्रावली

"भारतेन्दु जी को केवल नाटक के शास्त्रीय विधान का ज्ञान ही नहीं था, अपितु वे नाट्य-विधान के प्रयोग में पूरे पंडित थे।" चन्द्रावली का वस्तु-संविधान शिल्प-सौन्दर्य से पूर्ण है। नाटिका के शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर 'चन्द्रावली नाटिका' खरी उतरती है।

नाटिका के शास्त्रीय लक्षण

नाट्य शास्त्र के प्रथम आचार्य भरत-मुनि ने नाटिका को उपरूपक का पहला भेद माना है और उसके लक्षण निम्न प्रकार बतलाये हैं :—

१. नाटिका का कथानक कल्पित होता है।
२. इसमें चार अंक होते हैं।
३. इसमें स्त्री पात्रों की प्रधानता रहती है।
४. कथानक का नायक धीर ललित होता है, जो राजा या राजवंश का होता है।
५. नाटिका का नायिका राजवंश या रनिवास से होती है, जो संगीत और नृत्यकला में प्रवीण होती है।
६. नायक नायिका को अत्यधिक प्रेम करता है, परन्तु महारानी के भय से उससे मिलने में शंकित रहता है।
७. महारानी या विवाहिता पत्नी पग-पग पर मान करती है। वह नायक और नायिका के मिलने में बाधक होती है। अन्त में उसी की आज्ञा से नायक नायिका से मिलता है। प्रेमिका कनिष्ठा नायिका होती है।
८. नाटिका में शृंगार-रस की प्रधानता रहती है।
९. कैशिकी वृत्ति के सम्पूर्ण रूपों की नाटिका के चारों अंकों में प्रधानता रहती है।

१०. कथानक कार्यावस्था, अर्थ-प्रकृति और संधियों में गठित होता है। केवल विमर्श संधि या तो होती ही नहीं या उसका आभास मात्र ही होता है।
११. कथानक से पहले नांदीपाठ होता है। इसके पश्चात् सूत्रधार आकर कथानक की सूचना देता है। प्ररोचना में नाटक एवं नाटककार की प्रशंसा होती है।
१२. प्ररोचना के पश्चात् सूत्रधार और पारिपार्श्वक में प्रस्तावना के रूप में संभाषण होता है।
१३. वस्तु-संविधान में यथास्थान नेपथ्य, विष्कंभक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार, अंकमुख आदि आते हैं।
१४. अन्त में भरतवाक्य रहता है।

'चन्द्रावली नाटिका' में नाटिका के उपर्युक्त शास्त्रीय नियमों का पूर्ण रूप से पालन परिचय हुआ है। भारतेन्दु जी ने इसमें अपनी स्वतन्त्र प्रकृति का परिचय दिया है।

कवि-कल्पित कथानक

'चन्द्रावली नाटिका' का कथानक पूर्ण रूप से कवि-कल्पित है। इतना अवश्य है कि भारतेन्दु जी ने कृष्ण के विषय में पुराणों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में पल्लवित धारणा एवं भावना को ग्रहण किया है। गोपियों तथा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन पुराणों में विस्तार से मिलता है, किन्तु चन्द्रावली कवि-कल्पना मात्र ही है। चन्द्रावली की सखियों में ललिता को छोड़कर अन्य सभी कवि-कल्पित हैं।

अंक

नाटिका में चार अंक होने चाहिए। 'चन्द्रावली नाटिका' में चार अंक हैं। प्रथम अंक में चन्द्रावली और ललिता का वार्तालाप चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट करता है। दूसरे और तीसरे अंक में चन्द्रावली के प्रलाप और विरह-विह्वलता में प्रेम-विरह चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है। तीसरे अंक में सखियाँ कृष्ण और चन्द्रावली के मिलन-प्रयास में लगी दिखाई पड़ती हैं। चतुर्थ अंक में कृष्ण और चन्द्रावली के मिलन में परम फल की प्राप्ति हो जाती है।

स्त्री-पात्रों का आधिक्य

'चन्द्रावली नाटिका' में स्त्री पात्रों की प्रधानता है। प्रायः सभी पात्र स्त्रियाँ

ही हैं। प्रारम्भ में शुकदेव और नारद जी अवश्य पुरुष पात्र रंगमंच पर आते हैं, परन्तु कथानक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इनके वार्त्तालाप से चन्द्रावली के अलौकिक प्रेम की सूचना ही मिलती है। चन्द्रावली और उसकी सखियों से सारा कथानक भरा हुआ है। सखियों के रूप में स्त्री पात्रों की भरमार हो गई है। महारानी राधा अप्रत्यक्ष रूप में ही आती हैं। नाटिका के शास्त्रीय नियमों का पालन करने के लिए नाटककार ने श्रीकृष्ण का प्रवेश योगिन (स्त्री वेश) के रूप में कराया है।

धीर ललित नायक

नाटिका का नायक धीर ललित होना चाहिए। श्रीकृष्ण अत्यन्त चतुर, विनोदप्रिय, विलासी, संगीतप्रिय और नृत्यकला में निपुण धीर ललित नायक हैं। कृष्ण राजवंश के हैं और समस्त उच्च वंशों के पूज्य हैं। वे अनुरागवती नायिका चन्द्रावली पर अनुरक्त हैं।

नायिका

कथानक की नायिका चन्द्रावली नृत्य और संगीत में निपुण तथा अनुरागवती है। वह राजमहलों में रहने वाली राजा चन्द्रभान की पुत्री है और कृष्ण के प्रेम में डूबी हुई है।

महारानी

ब्रज-स्वामिनी राधा कृष्ण की पटरानी हैं। वे कृष्ण और चन्द्रावली के मिलन में बाधक हैं। नाटिका के लक्षणों के अनुसार ज्येष्ठा को मानवती होना चाहिए था, किन्तु राधा कहीं मान करती हुई नहीं दिखाई पड़ती; परन्तु उनके मान करने का संकेत माधवी के निम्न कथन में मिल जाता है :—

"सखी मेरे जी में तो एक बात आवै है। हम तीनि हैं। सो तीनि काम बाँटि लें। प्यारी जू के मनाइबे को मेरो जिम्मा। यह काम कठिन है और तुम दो उनमें सों एक याके घरकेन सों याकी सफाई करावै और एक लालजू सों मिलिबे की कहै।"

नाटिका के अन्त में राधा की अनुमति से ही चन्द्रावली और कृष्ण का मिलन होता है। यहाँ भी नाटिका के नियमों का पालन हुआ है :—

"सखी ! बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा दई कि प्यारे सों कहि दै कि चन्द्रावली की कुंज में सुखेन पधारौ।"

शृंगार-रस की प्रधानता और कैशिकी वृत्ति

'चन्द्रावली नाटिका' में शृंगार-रस की प्रधानता है। सारा कथानक ही प्रेम, विरह और मिलन में संगठित हुआ है। चन्द्रावली के विरह में वियोग की समस्त अवस्थाएँ चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई हैं। सारी नाटिका आद्यान्त शृंगार रस की अनूठी उक्तियों से भरी हुई है :—

"पहले मुसकाइ लजाइ कछू,
क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियौ।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ के प्रीति,
निबाहन को क्यों कलाम कियौ।।
'हरिचन्द' भये निरमोही इतै,
निज नेह को यों परिनाम कियौ।
मन माँहि जो तोरनहुँ को हुती,
अपनाइ के क्यों बदनाम कियौ।।"

'चन्द्रावली' नाटिका में सर्वत्र कैशिकी वृत्ति मिलती है। कैशिकी वृत्ति के अन्तर्गत नायक एवं नायिका के प्रेम और विलास के चित्रों की प्रधानता होती है। 'चन्द्रावली' का सारा कथानक कृष्ण और चन्द्रावली के प्रेम और विलास की कथा है। कैशिकी वृत्ति में नृत्य और संगीत की भी प्रधानता रहती है। इस नाटिका में सर्वत्र संगीत ही संगीत है। स्त्री पात्रों की अधिकता या झूले का प्रसंग कैशिकी वृत्ति के अन्तर्गत है।

वस्तु-संविधान

'चन्द्रावली का वस्तु-गठन नाटिका के शास्त्रीय नियमों के अनुसार है। कथानक के प्रारम्भ होने से ब्राह्मण के आशीर्वाद पाठ में 'नांदी पाठ' की शास्त्रीय परंपरा है :—

भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब धन कोऊ, लखि नाचत मन मोर।"

\+ \+ \+

नेति-नेति तत् शब्द प्रतिपाद्य सर्व भगवान ।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करो कल्यान ।।

इसके पश्चात् सूत्रधार और पारिपार्श्वक वार्तालाप करते हैं। इसमें **प्ररोचना** की शास्त्रीय विधि का पालन हुआ है। विष्कम्भक में वंशी-रव नेपथ्य में से होता है। प्रथम अंक से पहले नाटककार ने विष्कम्भक को रखा है। इसमें शुकदेव और नारद के संभाषण द्वारा गोपियों और चन्द्रावली के प्रेम का परिचय मिलता है। दूसरे अंक के पश्चात् अंकावतार का प्रयोग नाटककार ने नाटिका को पूर्णतः शास्त्रीय रूप देने के लिए किया है।

वस्तु-संविधान में कार्यावस्था, अर्थ-प्रकृति और संधियाँ

'चन्द्रावली' के वस्तु-संविधान में सभी कार्यावस्थाएँ मिलती हैं। प्रथम अंक में ललिता और चन्द्रावली के वार्त्तालाप में कृष्ण के प्रति चन्द्रावली का प्रेम स्पष्ट हो जाता है। यहाँ पर कथानक के 'फल'—कृष्ण मिलन का संकेत भी मिल जाता है। अतः यहाँ पर **कार्यारम्भ** की अवस्था है। दूसरे अंक में सखियाँ चन्द्रावली से कृष्ण को मिलाने का प्रयत्न प्रारम्भ करती हैं, यहाँ चन्द्रावली की सखी संध्यावली के निम्न कथन में **प्रयत्नावस्था** है—

'मैं चन्द्रावली की पाती बाके यारै सौंप देती तो इतनी खुटकोउ न रहती।'

तीसरे अंक में चन्द्रावली की विरह-विह्वलता चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। माधवी, काममंजरी आदि सखियाँ चंद्रावली को धैर्य देती हैं और चंद्रावली से कृष्ण को मिलाने का निश्चय करती हैं। यहाँ **'प्राप्त्याशा कार्यावस्था'** है।' चतुर्थ अंक में कृष्ण योगिन के वेश में आते हैं। चन्द्रावली को यह शंका हो जाती है कि योगिन के वेश में श्रीकृष्ण ही हैं। यहाँ **'नियताप्ति'** की कार्यावस्था है। कृष्ण प्रत्यक्ष होकर चन्द्रावली को अंक में ले लेते हैं। कृष्ण और चन्द्रावली गलबाहीं डालकर बैठते हैं। यहाँ **'फलागम'** की कार्यावस्था है।

'अर्थ प्रकृतियों' की भी संयोजना 'चन्द्रावली नाटिका' में है। प्रथम अंक में ललिता चन्द्रावली के प्रेम की प्रशंसा करती हुई कहती है—

"सखी तू धन्य है, बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द को सार्थक करने वाली और प्रेमियों के मंडल की शोभा है।"

उक्त कथन में 'बीज' अर्थ प्रकृति है। इस बीज का पल्लवन आगे हुआ है। दूसरे अंक में चन्द्रावली के वियोग का विस्तार होता है। यहाँ 'बिन्दु' अर्थ प्रकृति है। वर्षा-वर्णन में 'पताका' तथा सखियों के भूला भूलने के प्रसंग में 'प्रकरी' अर्थ प्रकृति है। वर्षा-वर्णन और भूले के प्रसंग चन्द्रावली के विरह को उद्दीप्त करके कथानक को फलागम की ओर ले जाते हैं। चौथे अंक में जहाँ चन्द्रावली के हृदय में योगिन वेश में कृष्ण के होने की शंका उत्पन्न होती है वहाँ 'कार्य' नामक अर्थ प्रकृति प्रारम्भ होती है।

संधियाँ

प्रथम अंक में चन्द्रावली और ललिता के निम्न संभाषण में 'मुख संधि' है—

"सखी मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है। ससार में जितना प्रेम होता है; कुछ इच्छा लेकर होता है। सब अपने ही सुख से सुख मानते हैं। पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख में सुख मानती है। यह तेरी चाल संसार से निराली है। इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है।

दूसरे अंक में 'बीज' का लक्ष्य प्रकट होने लगता है। सखियाँ चन्द्रावली को कृष्ण से मिलाने के प्रयत्न मे लग जाती हैं। अंकावतार में कृष्ण के पास पत्र भेजने के प्रकरण में 'प्रतिमुख संधि' है। तीसरे अंक में जहाँ सखियाँ चन्द्रावली को धैर्य बँधाती है, 'गर्भ संधि' है। इसी अंक में चन्द्रावली से कृष्ण को मिलाने की सखियाँ प्रतिज्ञा करती हैं। यहाँ पर 'विमर्श संधि' का हलका-सा आभास मिल जाता है। चौथे अंक में मूर्च्छित चन्द्रावली को कृष्ण अपने अंक में ले लेते हैं। यहाँ 'निर्वहण संधि' है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'चन्द्रावली' प्रेम-नाटिका के शास्त्रीय नियमों की कसौटी पर खरी उतरती है। भारतेन्दु जी को नाट्यकला का पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान था और उन्होंने उसका उपयोग 'चन्द्रावली' नाटिका में किया है। नाटिका के लक्षणों के अनुसार प्रस्तुत नाटिका का कथानक नाटकीय उप-योगिता से युक्त है। अन्त में 'भरतवाक्य' का प्रयोग शास्त्रीय परंपरा के अनुसार ही है।

चरित्र-चित्रण

प्रश्न ९—चन्द्रावली नाटिका के चरित्र-चित्रण की आलोचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न १०—"चन्द्रावली नाटिका के चरित्र-चित्रण में कला और चरित्र-वैचित्र्य का अभाव है।"—इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—स्त्री पात्रों का आधिक्य

'चन्द्रावली' शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार निर्मित प्रेम-नाटिका है। प्रेम-नाटिका में स्त्री पात्रों की अधिकता रहती है। 'चन्द्रावली' में प्रायः सभी पात्र स्त्रियाँ हैं। शुकदेव और नारद प्रस्तावना में आते हैं। उनका कथानक में कोई विशेष महत्व एवं योग नहीं है। उनके वार्तालाप से कथानक की पृष्ठभूमि अवश्य बनती है। श्रीकृष्ण का प्रवेश कथानक के अन्त में होता है। वह भी योगिन (स्त्री) के वेश में। सारा कथानक चन्द्रावली और उसकी सखियों के वार्ता-विलास में गठित हुआ है। राधा ब्रज-स्वामिनी और ज्येष्ठा नायिका हैं, किन्तु उनका प्रत्यक्ष रूप में रंगमंच पर प्रवेश नहीं हुआ है। कनिष्ठा चन्द्रावली ही कथानक की नायिका है। रंगमंच पर प्रवेश न करने पर भी ब्रज-स्वामिनी राधा का कथानक में महत्वपूर्ण योग रहा है। उन्हीं के संकोच के कारण श्रीकृष्ण चन्द्रावली से मिल नहीं पाते और अन्त में उन्हीं की स्वीकृति से चन्द्रावली और श्रीकृष्ण का मिलन होता है। ललिता, माधवी, सन्ध्या, वर्षा, वनदेवी चम्पकलता, काममंजरी, कामिनी, भामा, विलासिनी, श्यामला आदि चन्द्रावली की सखियाँ हैं।

चरित्र-चित्रण में कला और चरित्र-वैचित्र्य का अभाव

चन्द्रावली नाटिका में स्त्री पात्रों की भरमार है, किन्तु चरित्र-चित्रण में कलात्मकता और चरित्र-वैचित्र्य नहीं है। सभी चरित्र एक ही साँचे में ढले

हुए हैं। चन्द्रावली कृष्ण के प्रेम में दूध-पानी की तरह मिली हुई है और समस्त सखियाँ चन्द्रावली से कृष्ण को मिलाने के लिये प्रयत्नशील हैं। सखियों के चरित्र का इतना ही उपयोग कथानक में है कि वे वियोग-विह्वल चन्द्रावली को धैर्य बँधाती हैं तथा चन्द्रावली और कृष्ण के मिलन में सहायक होती हैं। सखियों के चरित्र और व्यवहार में स्त्रियोचित कोमलता, मधुरता और मनोवैज्ञानिकता है।

'चन्द्रावली' नाटिका की पात्र-योजना में कलात्मकता नहीं है। सखी पात्रों की एक-सी स्थिति आद्यान्त नहीं रहती। प्रत्येक अंक में नई सखियाँ सामने आ जाती हैं। सखी पात्रों की इतनी अधिकता हो गई है, कि रंगमंच पर उनको सँभालना कठिन है। दर्शक उनमें से प्रत्येक के कार्य को सामान्य रीति से समझ नहीं पाता। प्रथम अंक में चन्द्रावली की सखी ललिता सामने आती है। यहाँ कथानक में उसका महत्व है। उसके और चन्द्रावली के स्नेहालाप में चन्द्रावली के प्रेम का प्रकाशन हो जाता है। दूसरे अंक में ललिता का कोई पता नही चलता। संध्या, वनदेवी और वर्षा नाम की नई सखियाँ सामने आ जाती हैं। तीसरे अंक में दूसरे अंक की सखियों के स्थान पर विलसिनी, काममंजरी, चम्पकलता आदि सखियों की भीड़ आती है और पिछले अंकों की सखियों का कोई उल्लेख नहीं होता। चतुर्थ अंक में द्वितीय और तृतीय अंक की सखियों का कोई प्रसंग नहीं आता। पहले अंक की ललिता पुनः प्रवेश करती है और नई सखी विशाखा आती है। इस प्रकार पात्र-योजना रंगमंच की दृष्टि से सर्वथा दोषपूर्ण है। 'चन्द्रावली नाटिका' की पात्र-योजना न तो कलात्मक है और न उसमें चरित्र-वैचित्र्य ही है।

प्रमुख पात्रों के चरित्र की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सखियों के चरित्र और कार्य में एक समानता है। उनके चरित्र में विविधता नहीं है। वे या तो वियोग-कातर चन्द्रावली को धैर्य देती हैं, या उससे कृष्ण को मिलाने के प्रयत्न में लगती हैं। प्रमुख पात्रों में चन्द्रावली, ललिता और कृष्ण को लिया जा सकता है।

चन्द्रावली

चन्द्रावली राजा चन्द्रभान की पुत्री है और कृष्ण में अनुरक्ता है। वह कनिष्ठा

होते हुए भी कथानक की नायिका है। उसमें नायिका के समस्त गुण हैं। वह राजवंश की है और गायन-प्रवीण एवं अनुरागवती है। वह कृष्ण के प्रेम में निमग्न है। कृष्ण भी उसे प्रेम करते हैं, किन्तु ज्येष्ठा नायिका श्री राधा जी के संकोच के कारण मिल नहीं पाते। चन्द्रावली का विरह उन्माद और प्रलाप की अवस्था को पहुँच जाता है। सारा कथानक उसके विरह-जनित उद्‌गारों और प्रलापों से भरा हुआ है। उसके नेत्र कुल-मर्यादा और संसार की कुचर्चा का भय छोड़कर कृष्ण की छवि देखने को आतुर हैं—

"धारन दीजिए धीर हिये,
कुल-कानि को आज बिगारन दीजिए।
मारन दीजिए लाज सबै,
'हरिचन्द' कलंक पसारन दीजिए॥
चार चवाइन कौ चहुँ ओर सों,
सोर मचाय पुकारन दीजिये।
छाँड़ि संकोचन चन्द मुखै,
भरि लोचन आजु निहारन दीजिए॥"

चन्द्रावली का प्रेम स्वार्थ-भावना से रहित निष्काम-प्रेम है। कृष्ण उसकी प्रेम-विह्वलता से द्रवित होकर स्वयं आकर अंक में ले लेते हैं। चन्द्रावली को कृष्ण के दर्शन के अतिरिक्त और कोई इच्छा नहीं है।

"नाथ! और कोई इच्छा नहीं। हमारी तो सब इच्छा की अवधि आपके दर्शन ही ताईं है।"

चन्द्रावली के चरित्र के दो पक्ष हैं—प्रथम तो उसका प्रेम और विरह एक सामान्य स्त्री का प्रेम और विरह है। अपने इस रूप में चन्द्रावली एक प्रेम-विह्वला नारी के रूप में सामने आती है। उसका दूसरा रूप पुष्टि-मार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतीक है। इसके द्वारा भारतेन्दु जी की भक्ति-भावना अभिव्यक्त हुई है। चन्द्रावली के चरित्र के उपर्युक्त दोनों पक्षों का चित्रण बड़ी सफलता से हुआ है। चन्द्रावली का चरित्र लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के प्रेम का आदर्श है।

ललिता

ललिता चन्द्रावली की अन्तरंग सखी है। चन्द्रावली से उसका कोई छिपाव नहीं है। वह चन्द्रावली की प्रेम-पीर को दूर करने के लिये तत्पर दिखाई पड़ती है। वह चन्द्रावली की इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करती है—

"तू उदास मत हो ! जो तेरी इच्छा हो, पूरी करने को उद्यत हूँ।"

ललिता में त्याग और परस्वार्थ की भावना है। वह स्वयं कृष्ण का प्रेम पाना नहीं चाहती, अपितु कृष्ण को चन्द्रावली से मिलाना चाहती है। वह प्यारे की प्यारी चन्द्रावली से प्रेम करती है।

ललिता गायन-कला में प्रवीण है। ललिता को अपने प्रयास में सफलता मिलती है। श्रीकृष्ण उसके समक्ष चन्द्रावली की बैठक में पधारते हैं। अन्त में वह अपने हृदय का आनन्द व्यक्त करती हुई कहती है—

"अहा ! इस समय जो मुझे आनन्द हुआ है, इसका अनुभव और कौन कर सकता है। जो आनन्द चन्द्रावली को हुआ, वही मुझे भी होता है।"

चन्द्रावली का चरित्र एक आदर्श सखी का चरित्र है। उसमें हास-परिहास, चंचलता, चातुर्य, लगन आदि एक सफल सखी के समस्त गुण हैं।

श्रीकृष्ण

'चन्द्रावली नाटिका' के नायक श्रीकृष्ण हैं, परन्तु वे प्रत्यक्ष रूप में रंगमंच पर नहीं आते। अन्त में योगिन (स्त्री) वेश में रंगमंच पर आते हैं और चन्द्रावली की प्रणय-दशा से द्रवित होकर प्रत्यक्ष होकर उसे अपने अंक में ले लेते हैं। समस्त कथानक में प्रत्यक्ष रूप से उन्हीं की चर्चा है।

कृष्ण धीर ललित नायक हैं। वे चन्द्रावली को बहुत प्रेम करते हैं, परन्तु ज्येष्ठा श्रीराधा जी के संकोच के कारण उससे मिल नहीं पाते। अन्त में उनको राधा जी की चन्द्रावली से मिलने के लिए स्वीकृति मिल जाती है।

कृष्ण का चरित्र पुराणों में वर्णित परम्परा के अनुसार ही चित्रित हुआ है। वे भक्त-वत्सल और अपने प्रेमियों के बिना मोल के दास हैं। वे भक्तों के प्रेम से द्रवित होकर उन पर कृपा करते हैं। चन्द्रावली के प्रेम-विरह से द्रवित होकर ही वे उसे अंक में ले लेते हैं—

"........मैं तो अपने प्रेमिन का बिना मोल को दास हूं।"

× × ×

"प्यारी छिमा करियो । हम तो तुम्हारे सबन के जनम जनम के रिनियां हैं।"

कृष्ण शोभा के सिन्धु हैं। उसके लिए ललिता कहती है—

"ब्रज में रहकर उससे वही बची होगी, जो ईंट पत्थर की होगी।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्रीकृष्ण धीर ललित नायक हैं। वे मनोज्ञ, चतुर, भक्तवत्सल और रसिक हैं।

अन्य पात्रों में वर्षा, वनदेवी, काममंजरी, माधवी, चम्पकलता और विशाखा का कार्य उल्लेखनीय है। ये सभी चन्द्रावली की सखियां हैं और चन्द्रावली से कृष्ण को मिलाने में सहायक होती हैं।

उपर्युक्त विवेचना से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि चन्द्रावली नाटिका में चन्द्रावली के अतिरिक्त अन्य सभी पात्र गौण हैं। उनके चरित्र में न तो व्यक्ति-वैचित्र्य की विविधता है और न उसके चरित्र का सम्यक् विकास ही हुआ है। सखी पात्रों की भरमार दोष बन गई है। केवल ललिता तथा दूसरे अंक की सखियों से ही काम चलाया जा सकता था। चन्द्रावली के चरित्र का ही सम्यक् विकास हुआ है। उसका विरह जहाँ एक सामान्य प्रेमिका का विरह है, वहाँ वह पुष्टिमार्गीय रागानुगा-भक्ति का प्रतीक भी है।

संवाद और स्वगत

प्रश्न ११—कथोपकथन की दृष्टि से चन्द्रावली नाटिका की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—नाटक में कथोपकथनों का महत्व

नाटक की सफलता संवादों की सफलता पर ही निर्भर है। कथोपकथनों के द्वारा ही कथानक विकसित होता है और पात्रों का अन्तःचरित्र प्रकाशित होता है। सफल कथोपकथनों के लिये आवश्यक है कि वे संक्षिप्त और छोटे-छोटे वाक्यों में हों। उनमें पात्रानुकूलता, सरलता एवं व्यावहारिकता का गुण होना चाहिये। वे पात्रों के हृदयगत विशेषताओं के परिचायक हों और साथ ही कथा-प्रवाह में सहायक हों।

चन्द्रावली के कथोपकथनों में मनोवैज्ञानिकता है। वे जहाँ कथानक को आगे बढ़ाते हैं, वहाँ पात्रों के चरित्र की विशेषताओं को भी प्रकाशित करते हैं। शुकदेव और नारद के निम्न कथोपकथन में कथा की पृष्ठभूमि का परिचय मिल जाता है और साथ ही आगे का भी कथानक-सूत्र खुल जाता है। चन्द्रावली का प्रेम अनन्य और विलक्षण है। वह माता-पिता, भाई-बन्धु आदि के विरोध की चिन्ता छोड़कर श्रीकृष्ण में जल में दूध की भाँति मिली रहती है—

शुकदेव—कहिए, उन सब गोपियों में प्रेम विशेष किसका है?

नारद—विशेष किसका कहूँ और न्यून किसका कहूँ? एक-से-एक बढ़कर हैं.......तथापि चन्द्रावली के प्रेम की चर्चा ब्रज की डगर-डगर में फैली हुई है। अहा! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता-पिता, भाई-बन्धु, सब विरोध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भय है, तथा श्रीकृष्ण से जल में दूध की भाँति मिल रही हैं।"

प्रारम्भ में चन्द्रावली और ललिता के वार्तालाप में चन्द्रावली के प्रेम का

प्रकाशन होता है। आगे सखियों के वार्तालाप में जहाँ बहुत-सी विगत बातों की सूचना मिलती है, वहाँ आगे की घटनाओं का भी संकेत मिल जाता है। तीसरे अंक में काममंजरी, माधवी और विलासिनी चन्द्रावली से कृष्ण को मिलाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेती हैं। वहाँ उनकी बातचीत से आगे की कथा का संकेत मिल जाता है। काममंजरी कृष्ण को मनाने, विलासिनी प्रियाजी को मनाने और माधवी चन्द्रावली के घर वालों को मनाने का उत्तरदायित्व सँभालती है।

काममंजरी—लाल जी सों मैं कहूँगी। मैं विनै बहुत लाजाऊँगी और जैसे होयगो, वैसे यासों मिलाऊँगो।

माधवी—सखी वेऊ का करै। प्रिया जी के डर सों कछु नहीं कर सके!

विलासिनी—तो प्रिया जी को जिम्मा तेरौ है हो।

माधवी—हाँ हाँ प्रियाजी को जिम्मा मेरौ।

विलासिनी—तो याके घर कौ मेरौ।

आगे चतुर्थ अंक मे विशाखा आकर सूचना देती है कि ब्रज-स्वामिनी राधा ने श्रीकृष्ण को चन्द्रावली की कुंज मैं सुख से पधारने की आज्ञा दे दी है।

पात्रों के वार्तालाप में उनके हृदय की विशेषताओं का उद्घाटन हो जाता है। प्रथम अंक में चन्द्रावली और ललिता का वार्तालाप चलता है, इसमें ललिता चन्द्रावली के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम को जान जाती हैं और प्रेम का प्रकाशन हो जाता है। इस वार्तालाप में चन्द्रावली के भोलेपन और ललिता की वाक्चातुरी का परिचय मिलता है। काममंजरी, विलासिनी और माधवी कथोपकथनों में स्त्रियोचित प्रकृति का परिचय मिलता है।

'चन्द्रावली' नाटिका के कथोपकथनों में पात्रानुकूलता, सरसता और व्यावहारिकता के गुण हैं। ऐसे कथोपकथन संक्षिप्त और नाटकीय सौन्दर्य से पूर्ण हैं। एक उदाहरण लीजिए—

माधवी—हाय-हाय सखियों! यह तो रोय रही है।

काममंजरी—सखी प्यारी! रौवै मती, सखी तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै।

माधवी—सखी; मैं तेरे हाथ जोड़ूं । मत रोवै सखी । हम सबकौ जीव भरयौ आवै है ।

विलासिनी—सखी; जो तू कहेगी, हम सब करेंगी । हम भले ही प्रियाजी की सहैंगी, पर तोसूं हम सब काहू बात से बाहर नहीं ।

चन्द्रावली—(रोकर) सखी, एक उपाय मुझे सूझा है । जो तुम मानो ।

माधवी—सखी, क्यों न मानेंगी, तू, कहै क्यों नहीं ।

चन्द्रावली—सखी, मुझे यहाँ अकेली छोड़ जाओ ।

माधवी—तो तू अकेली यहाँ क्या करेगी ।

चन्द्रावली—जो मेरी इच्छा होगी ।

माधवी—भला तेरी इच्छा का होयगी, हमहूं सुनें ?

चन्द्रावली—सखी, वह उपाय कहा नहीं जाता ।

माधवी—तौ का अपने प्राण देगी । सखी, हम ऐसी भोरी नहीं हैं कै तोहि अकेली छोड़ जायँगी ।

चन्द्रावली में कथोपकथनों के रूप

चन्द्रावली के कथोपकथनों को सामान्यत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. साधारण गद्यात्मक कथोपकथन ।

२. पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों से प्रभावित पद्यात्मक कथोपकथन ।

गद्यात्मक कथोपकथन का विवेचन ऊपर किया जा चुका है । पद्यात्मक कथोपकथन में अस्वाभाविकता आ गई है । कुछ उदाहरण लीजिए—

वर्षा—(हाथ पकड़ कर) कहाँ चली सजिकै ?—

चन्द्रावली—पियारे सों मिलन काज ।

वर्षा—कहाँ तू खड़ी है ?

चन्द्रावली—पियारे ही को यह धाम है ।

वर्षा—कहा कहै मुख सों ?

चन्द्रावली—पियारे प्रान प्यारे ।

वर्षा—कहा काज है ?

चन्द्रावली—पियारे सौ मिलन मोहि काम है ।

वर्षा—तू है कौन ?

चन्द्रावली—प्रीतम पियारो मेरी नाम है।

इसी प्रकार ललिता और योगिन का संवाद है—

ललिता—कहाँ तुम्हारो देस है ?

जोगिन—प्रेम नगर पिय गाँव।

ललिता—कहा गुरू कहि बोलहीं ?

जोगिन—प्रेमी मेरो नाँव।

ललिता—जोग लियौ केहि कारनै ?

जोगिन—अपने प्रिय के काज।

ललिता—मन्त्र कौन ?

जोगिन—प्रिय नाम इक,

ललिता—कहा तज्यो ?

जोगिन—जग लाज।

ललिता—आसन कित ?

जोगिन—जित ही रमे,

ललिता—पंथ कौन ?

जोगिन—अनुराग।

ललिना—सावन कौन ?

जोगिन—पिया मिलन,

ललिता—गादी कौन ?

जोगिन—सुहाग।

इस प्रकार के पद्यात्मक कथोपकथनों में काव्य का आनन्द अवश्य है, परन्तु रंगमंच की दृष्टि से ये दोषपूर्ण हैं। चन्द्रावली के प्रलाप और स्वगत-कथनों में नाटकीयता का सर्वथा अभाव है, परन्तु इनमें भरपूर काव्य-माधुरी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चन्द्रावली के कथोपकथन सजीव, पात्रानुकूल, व्यंग्य-विनोद तथा हास-परिहास से परिपूर्ण हैं। वे ब्रज-संस्कृति

की झाँकी प्रस्तुत करने में सफल हैं। कथोपकथन अभिनय की दृष्टि से भले ही लम्बे हों, किन्तु उनको अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। वे चन्द्रावली के हृदय की प्रेम-दशा और भारतेन्दु जी की भक्ति-भावना को प्रकट करने में सहायक हैं।

प्रश्न १२—चन्द्रावली नाटिका के स्वगत कथनों के औचित्य पर विचार कीजिए।

उत्तर—'चन्द्रावली नाटिका' में स्वगत कथनों की भरमार है कथानक का विकास स्वगत कथनों में ही हुआ है। प्रस्तावना और विष्कंभक में कथानक की भूमिका स्वगत-कथन के रूप में ही अभिव्यक्त हुई है। विष्कम्भक में शुकदेव आकाश की ओर देखकर और वीणा का शब्द सुनकर नारद का भावमय वर्णन करते हैं। वेणु का शब्द सुनकर ब्रज-लीला की स्मृति में शुकदेव जी के उद्‌गार निकल पड़ते हैं। इस प्रकार कथानक का आरम्भ स्वगत कथनों से हुआ है।

दूसरे अंक की कथा चन्द्रावली के स्वगत से आरम्भ होती है। चन्द्रावली केले के वन में प्रेम-वियोगिनी बनी हुई एक वृक्ष के नीचे बैठी है। उनका स्वगत चलता है, जो कई पृष्ठों को घेरे हुए है। इसमें चन्द्रावली के प्रेम का निरूपण होता है और साथ ही नाटककार की भक्ति-भावना का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। चन्द्रावली कृष्ण के विलक्षण प्रेम का स्मरण करती है। वह उपालम्भ भी देती है। वनदेवी, संध्या और वर्षा सखियों से वार्तालाप करते हुए चन्द्रावली का प्रेम अत्यधिक उद्दीप्त हो जाता है। वह एक लम्बा स्वगत प्रारम्भ कर देती है। इस स्वगत में उसकी प्रेम-तन्मयता का परिचय मिलता है। चन्द्रावली उन्माद की अवस्था को पहुँच जाती है। वह जड़-चेतन का अन्तर भूलकर वृक्षादिकों से प्रियतम का पता पूछती फिरती है। द्वितीय अंक के पश्चात् अंकावतार के चन्द्रावली के प्रेम-पत्र को उठाने वाली चम्पकलता का स्वगत कथन भी महत्वपूर्ण है। इसमें चन्द्रावली की मार्मिक स्थिति का पता चलता है।

तीसरे अंक के अन्त में चन्द्रावली का एक लम्बा स्वगत आया है। इसमें चन्द्रावली की कृष्ण के प्रति आत्मीयता का परिचय मिलता है—

"हाय ! प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक ध्यान नहीं देते। प्यारे फिर यह शरीर कहाँ और हम तुम कहाँ ?............प्यारे रात छोटी है,

स्वाँग बहुत हैं।········मैं तो अपने-पराये सबसे बुरी बनकर बेकाम हो गई। सबको छोड़कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की·······प्यारे! मेरे पीछे कोई ऐसा चाहने वाला न मिलेगा।········प्यारे, तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह सब मेरे करम का दोष है। नाथ मैं तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूँ। प्यारे क्षमा करो, मेरे अपराधों की ओर न देखो, अपनी ओर देखो।"

चतुर्थ अंक के कथानक का आरम्भ योगिन के स्वगत से होता है। योगिन स्वयं अपना परिचय देती है और चन्द्रावली के प्रेम की सराहना करती है।

"निस्संदेह इसका प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आते ही इसके कपोलों पर कैसी जरदी दौड़ गई।"

× × ×

"होगा प्यारी ऐसा ही होगा। प्यारी मैं तो यहीं हूँ। यह मेरा ही कलेजा है कि अन्तर्यामी कहलाकर भी अपने लोगों से मिलन में इतनी देर लगती है।"

चन्द्रावली के स्वगत-कथन जहाँ उसकी अनन्य-प्रेम जनित विह्वलता को प्रकट करते हैं, वहाँ कथानक को सुश्रृंखलित बनाने में भी सहायक हैं, योगिन को देखकर उसके हृदय में शंका हो जाती है कि कहीं यही तो इसके प्रियतम नहीं हैं—

"·········हाय आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अन्धा बना देता है। भला वह कहाँ और मैं कहाँ?"

× × ×

"हाय-हाय! इसका गाना कैसा जी को बेधे डालता है····ठीक प्राण-प्यारे की सी आवाज है।"

× × ×

"हाय-हाय! इसकी कैसी मीठी बोली है जो एक साथ जी को छीन लेती है।"

× × ×

"हाय! यहाँ आज न जाने क्या हो रहा है। मैं कुछ सपना तो नहीं देखती। मुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते हैं। मेरे तो कुछ समझ में ही नहीं पड़ता कि मैं क्या देख रही हूँ।"

× × ×

"डोलूँगी-डोलूँगी। संग लगी। हाय हाय! मुझे क्या हो रहा है।"

× × ×

"मन की कासों पीर सुनाऊँ,
बकनो वृथा और पत खोनो सबै चबाई गाऊँ।
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊँ।

× × ×

पिय तोय राखौंगी भुजन में बांधि।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चन्द्रावली में स्वगत-कथनों का अपना महत्व है। इन्हीं के द्वारा कथानक का विकास होता है। कहीं-कहीं पर बहुत लम्बे कथोपकथन अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से अवश्य दोष-पूर्ण हो गये हैं, किन्तु कथानक में उनकी उपयोगिता देखते हुए उनमें अस्वाभाविकता नहीं लगती। वे जहाँ चन्द्रावली के हृदय को खोल कर रख देते है, वहाँ वल्लभाचार्य की पुष्टिमार्गीय रागानुगा, प्रेमा-भक्ति के अनुरूप पृष्ठभूमि भी बन जाते हैं। इसमें ब्रजभाषा काव्य का माधुर्य भरा हुआ है और चन्द्रावली नाटिका का काव्य-सौन्दर्य निखर पड़ा है। चन्द्रावली में स्वगत-कथन नाटकीय दृष्टि से दोषपूर्ण होने पर भी काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के हैं।

अभिनेयता

प्रश्न १३—अभिनेयता और रंगमंचीयता की दृष्टि से चन्द्रावली नाटिका की समीक्षा कीजिये।

उत्तर—भारतेन्दु ने चन्द्रावली रचना अभिनेयता और रंगमंच की दृष्टि में रखकर की। भारतेन्दु को अपने समय में प्रचलित पारसी थियेटरों के कुत्सित अभिनय से घृणा था। वे अपने नाटकों के माध्यम से जन-रुचि का परिष्कार और चरित्र-निर्माण करना चाहते थे। 'चन्द्रावली' में अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से दोष है। भारतेन्दु के समय तक हिन्दी रंगमच और नाट्य-कला का समुचित विकास नहीं हो पाया था, किन्तु इतने पर भी भारतेन्दु जी ने 'चन्द्रावली नाटिका' का अभिनेयात्मक बनाने का प्रयास किया है।

चन्द्रावली में अभिनय की दृष्टि से मुख्य तत्व

'चन्द्रावली' नाटिका की भाषा, सरल और स्वाभाविक होने के कारण अभिनेयता की दृष्टि से सफल है। भाषा की इस सरलता और स्वाभाविकता के कारण ही कथोपकथन अत्यन्त सटीक बन पड़े हैं। लोकोक्ति और मुहावरों तथा ग्रामीण शब्दों के प्रयोग से भारतेन्दु जी ने उसे और अधिक स्वाभाविक बना दिया है।

चन्द्रावली के लम्बे कथोपकथन रंगमंचीयता की दृष्टि मे दोषपूर्ण हैं—कथोपकथन कहीं-कहीं पर इतने अधिक लम्बे हो गये हैं, कि दर्शक उनका-कुछ अंश सुनकर ही ऊब उठेगा। काव्य एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चन्द्रावली के प्रलाप और हृदयोद्‌गार अवश्य सुन्दर और मार्मिक हैं, किन्तु रंगमंच की दृष्टि से उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। चन्द्रावली में स्वगत-कथन आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गये हैं। इसके साथ ही पद्यात्मक कथोपकथन भी रंगमंच की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं।

कविताओं का आधिक्य

'चन्द्रावली' नाटिका में कविताओं का इतना आधिक्य है कि उनको रंगमंच पर नहीं गवाया जा सकता। शायद ही ऐसा कोई पृष्ठ हो, जिसमें दो-चार कविताएँ न हों। इन समस्त कविताओं के गवाये जाने में बहुत अधिक समय की आवश्यकता होगी। अतः कविताओं की यह भरमार रंगमंच की दृष्टि से सर्वथा दोषपूर्ण है।

दृश्य-योजना

दृश्य-विधान भी 'चन्द्रावली' नाटिका के रंगमंच के अनुरूप नहीं है। दृश्य-विधान जितना भी कम होगा, नाटक रंगमंच की दृष्टि से उतना ही अधिक सफल होगा। 'चन्द्रावली' में दृश्यों की अधिकता है। चन्द्रावली की दृश्ययोजना निम्न प्रकार है।

प्रथम दृश्य—वृन्दावन से कथानक का प्रारम्भ होता है, जहाँ से गिरिराज पर्वत दिखाई दे रहा है।

दूसरा दृश्य—दूसरा दृश्य केले के वन का है ?

तीसरा दृश्य—यह दृश्य तालाब और उसके समीप के बगीचे का है।

चौथा दृश्य—यह दृश्य चन्द्रावली की बैठक का है।

पहले और दूसरे दृश्य को एक ही पर्दे पर दिखाने से दृश्यों की संख्या कम की जा सकती है। इस प्रकार दृश्य-विधान केद ोषों को दूर किया जा सकता है।

पात्रों की भरमार

'चन्द्रावली' में पात्रों की भरमार है और उनके प्रवेश में भी नाटकीयता नहीं है। पात्रों की बहुलता रंगमंच की दृष्टि से सबसे बड़ा दोष है। इतने पात्रों को रंगमंच पर नहीं सम्हाला जा सकता। प्रत्येक अंक में नए-नए पात्र प्रवेश करते हैं। उनका कथावस्तु से भी कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। प्रस्तावना में नारद और शुकदेव जी आते हैं। उनका कथानक से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। इनके द्वारा चन्द्रावली के अनन्य प्रेम और पुष्टि-मार्गीय रागानुगा-भक्ति का स्वरूप स्पष्ट होता है। इनका इतना ही महत्व है। प्रथम अंक में ललिता और चन्द्रावली रंगमंच पर आती हैं। इन दोनों के

सम्भाषण में नाटकीयता का पूर्ण रूप से समावेश हुआ है। दूसरे अंक में ललिता का कोई पता नहीं चलता तथा संध्या, वनदेवी और वर्षा चन्द्रावली की नई सखियाँ आती हैं। इनका कोई भी नाटकीय महत्व नहीं है। तृतीय अंक में प्रथम और द्वितीय अंक की किसी सखी का पता नहीं चलता। मालती, काममंजरी, बिलासिनी, चन्द्रकान्ता, बल्लभा, श्यामला, भामा, कामिनी, माधुरी आदि सर्वथा नवीन सखियों का प्रवेश होता है। इस प्रकार नाटक में व्यर्थ के पात्रों की अनावश्यक भीड़ हो जाती है। एक अंक के पश्चात् दूसरे अंक में सर्वथा नए पात्रों को देखकर दर्शक चौंक पड़ता है। वह उनसे तादात्म्य की स्थापना नहीं कर पाता। दूसरे अंक की सखियों ही से तीसरे अंक में काम चलाया जा सकता था। इस प्रकार पात्रों की अनावश्यक भीड़-भाड़ न हो पाती। स्पष्ट है कि पात्र-योजना की दृष्टि से 'चन्द्रावली' में रंगमंचीयता नाम-मात्र को भी नहीं है।

जिज्ञासा तत्व का अभाव

प्रस्तुत नाटिका के कथानक में अधिक उतार-चढ़ाव भी नहीं हैं। काव्य की अधिकता और लम्बे-लम्बे स्वगत-प्रलाप कथानक को शिथिल कर देते हैं, इससे साथ ही जिज्ञासा तत्व भी अन्त तक नहीं रहता। कृष्ण को योगिन के वेश में देखकर फल का अनुमान सहज ही लग जाता है।

निष्कर्ष

सामान्य दृष्टि से देखने पर चन्द्रावली अभिनेयता और रंगमंचीयता की दृष्टि से असफल नाटिका है। किन्तु जिस समय न तो हिन्दी नाट्य-कला विकसित ही हुई थी और न हिन्दी का अपना कोई रंगमंच ही था, भारतेन्दु का यह प्रयास सफल ही कहा जा सकता है। 'चन्द्रावली' में से निरर्थक कथोपकथन निकालकर पात्रों की संख्या कम करके तथा अनावश्यक कवितायें और दृश्य हटाकर उसे रंगमंचीय और अभिनय के योग्य बनाया जा सकता है। अपने मूल रूप में चन्द्रावली रंगमंचीय नाटक न होकर सरस पाठ्य-काव्य ही कहा जायगा।

रस-परिपाक और विरह-वर्णन

प्रश्न १४—रस-परिपाक की सफलता की दृष्टि से 'चन्द्रावली नाटिका' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १५—'चन्द्रावली नाटिका' के वियोग-वर्णन की समीक्षा कीजिए और स्पष्ट कीजिए कि इनमें विरह का गम्भीर एवं व्यापक रूप उपस्थित हुआ है।

उत्तर—'चन्द्रावली' विरह प्रधान प्रेम-नाटिका है। इसमें विरह का दोहरा महत्व है। प्रथम तो चन्द्रावली का विरह-वर्णन भारतेन्दु जी की भक्ति-भावना का प्रतीक है और दूसरे वह एक सामान्य नारी का व्यापक एवं गम्भीर विरह बन गया है।

'चन्द्रावली' का विरह-वर्णन भारतेन्दु के व्यक्तिगत प्रेम और रागानुगा भक्ति का प्रतिबिम्ब है। वल्लभ सम्प्रदाय की जिस पुष्टिमार्गीय रागानुगा भक्ति के भारतेन्दु उपासक थे, उसमें विरह-भक्ति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इस विरह भक्ति का प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

"हमारे प्रेमिन को हमसों हमारो विरह प्यारो है।"

चन्द्रावली विरह-आसक्ति में ही कृष्ण को पाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विरह भगवान को अधिक प्रिय है। चन्द्रावली का विरह इतना व्यापक है कि वह भक्त को भगवान के समक्ष करुणा भरी पुकार बन गया है। अन्त में चन्द्रावली की विरह-वेदना से श्रीकृष्ण द्रवित होते हैं, और चन्द्रावली को मिलन के रूप में फल की प्राप्ति होती है। चन्द्रावली रूपी विरहिणी आत्मा परमात्मा से पृथक् होकर छटपटाती है। अन्त में परमात्मारूप कृष्ण प्रकट होकर उसे अपने में लीन कर लेते हैं। यहीं रागानुगा भक्ति का प्रतिपादन हो जाता है। रागानुगा भक्ति में विरह का कितना अधिक महत्व है, यह श्रीकृष्ण के चन्द्रावली से निम्न कथन से स्पष्ट हो रहा है—

"प्यारी ! मैं निष्ठुर नहीं हूँ। मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ। परन्तु मोंहि निहचै है कै हमारे प्रेमिन को हमसों हूँ हमारो विरह प्यारो है।"

'चन्द्रावली' का विरह जहाँ रागानुगा भक्ति के अनुकूल है वहाँ रीति-कालीन शास्त्रीय परम्परा के अन्तर्गत वह हिन्दी के विरह-काव्य में श्रेष्ठ स्थान भी रखता है। वह परम्परागत शास्त्रीय-विरह-वर्णन का सावयव रूप उपस्थित करता है। उसकी अनुभूति और मार्मिकता हृदय में गांसी के तीर के समान चुभ जाती है।

चन्द्रावली का विरह प्रवासजन्य है

शास्त्रीय परम्परा में विरह चार प्रकार के माने गये हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। गुण श्रवण, चित्र-दर्शन था प्रत्यक्ष मिलन और दर्शन से नायक-नायिका के हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाता है और फिर मिलन में व्यवधान पड़ने से जो तड़पन होती है, उसे पूर्वराग जनित विरह मानते हैं। मान के अन्तर्गत नायक और नायिका में क्षणिक अनबन हो जाती है। वे समीप होते हुए भी एक दूसरे से पृथक रहते हैं। नायक के विदेश चले जाने पर नायिका को जो विरह होता है, वह प्रवास-जनित विरह है। विरह के आधिक्य में नायक एवं नायिका की दशा चिन्ता-जनक होकर मरण के समीप पहुँच जाती है, किन्तु मिलन की आशा बनी रहती है। इसे करुण विरह कहते हैं। 'चन्द्रावली' में विरह के रूप में विद्वानों में मतभेद है। बाबू ब्रजरत्नदास इसे पूर्वराग के अन्तर्गत मानते हैं। निम्न उक्ति का उदाहरण लेकर कुछ लोग 'चन्द्रावली' के विरह को मान के अन्तर्गत मानते हैं—

> कित कों ढरिगो वह प्यार सबै,
> क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
> 'हरिचन्द' भए हो कहा के कहा,
> नम्र बोलिबे में नहिं लाजत हौ।
> नित को मिलनों तो किनारे रह्यो,
> मुख देखत ही दुरि भागत हौ।

पहले अपनाय बढ़ाइ कै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ ।।

यह उक्ति पूर्व मिलन का स्पष्ट संकेत देती है क्योंकि चन्द्रावली के लिए प्रियतम की यह नई रुखाई है। उसके प्रियतम का वह प्यार कहाँ ढक गया, जो मिलन के समय था। उनमें इतना परिवर्तन हो गया, कि बोलते भी नहीं, उसका मुख देखते ही भाग जाते हैं। वे पहले अपना चुके हैं। किन्तु अब रूठने में उनको लाज नहीं आती। यहाँ रूठने के शब्द मात्र से ही इस उक्ति के आधार पर चन्द्रावली के विरह को मान के अन्तर्गत नहीं मान सकते हैं। चन्द्रावली से कृष्ण का मिलन हो चुका था, किन्तु वे किसी संकोच या परिस्थितियों के कारण नहीं मिल पाते और दूर रहते हैं। अतः यह विरह प्रवास के अन्तर्गत ही है।

चन्द्रावली के निम्न कथनों से स्पष्ट है कि उसका कृष्ण से मिलन हो चुका था—

नैना वह छबि नाहिन भूले।
दया भरी चहुँ दिशि की चितवनि नैन-कमल दल फूले ।।
वह आवनि, वह हँसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरे।
वह बतरानि, मुरन हरि को वह, वह देखन चहुँ ओरे ।।

\+ \+ \+

मन-मोहन तें बिछुरी जब सों,
तन आँसुन सों सदा धोवति हैं।

\+ \+ \+

पहिले मुसुकाइ लजाय कछू,
क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ कै प्रीति,
निवाहन को क्यों कलाम किया।
'हरिचन्द' भये निरमोही इतै,
निज नेह को यों परिनाम कियो।

मन माँहि जो तोरन हूँ की हुती,
अपनाइकै क्यों बदनाम कियो ॥

\+ + +

अपनावत सोच विचार तबै,
जलपान कै पूछनी जाति नहीं।

\+ + +

बिछुरे पिए के जग सूनो भयो,
अब का करिए कहि देखिए का।

\+ + +

हमँहि बिसारी अनत रहे मोहन, औरै चाल गहो।

\+ + +

"हाय इन घरवालों और बाहर वालों के पीछे कभी उनसे रो-रोकर अपनी विपत भी न सुनाई।"

\+ + +

"सखी बेऊ का करें। प्रिया जी के डर सों कछु नहीं कर सकें।"

चन्द्रावली की उपर्युक्त उक्तियों से स्पष्ट है कि उसका कृष्ण से मिलन हो चुका था। उसके नेत्र मिलन-छवि नहीं भूल सके। उनकी 'आवनि' और 'बत रानि' उसके हृदय को चुरा रही है। वह मनमोहन से मिलकर बिछुड़ चुकी है। वह यह भी कहती है कि यदि वे प्रेम करने में स्वतंत्र नहीं थे तो उसे अपनाकर बदनाम क्यों किया? उन्हें सोच-विचार कर अपनाना था। मोहन उसको भुलाकर अन्यत्र चले गये हैं। अतः चन्द्रावली का विरह अवश्य ही प्रवास-जन्य है। प्रवास के लिये यह आवश्यक नहीं कि नायक दूर-देश में ही जाय। कृष्ण भी मथुरा में रहकर गोपियों से दूर नहीं थे। वे वहाँ जा सकती थीं, किन्तु परिस्थितियों के कारण निकट होकर भी मिल नहीं पातीं। चन्द्रावली और कृष्ण के मिलन में भी यही परिस्थितियाँ हैं। कृष्ण को प्रिया जी का संकोच है। चन्द्रावली को भी घर वालों तथा बाहर वालों की चर्चा का भय है।

'चन्द्रावली' में विरह-वर्णन की व्यापकता

'चन्द्रावली' का विरह-वर्णन अत्यन्त ही कारुणिक है। यह वर्णन क...

की दृष्टि से उच्च कोटि का है। विष्कम्भक में चन्द्रावली के प्रेम का उल्लेख मिलता है। प्रथम अंक में चन्द्रावली और ललिता के वार्तालाप में प्रकट हो जाता है कि उसका कृष्ण से मिलन हो चुका है, किन्तु परिस्थितियों ने वियोग की दीवार खड़ी कर दी। द्वितीय और तृतीय अंक चन्द्रावली की विरह-वेदना और प्रलाप से ही भरे हुए हैं। चतुर्थ अंक में भी विरहावस्था का ही चित्रण है। प्रिय-मिलन तो कथानक का अन्त होते-होते होता है। इस प्रकार चन्द्रावली में आद्योपान्त वियोग की वेगवती धारा प्रवाहित हो रही है।

विरह का सावयव शास्त्रीय निरूपण

चन्द्रावली का विरह शास्त्रीय दृष्टि से सर्वाङ्गीण है। विरह की समस्त दशाओं, आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव, सात्विक भाव, संचारी भाव आदि का सम्यक् निरूपण है।

स्थायी भाव—रति-चन्द्रावली और कृष्ण एक दूसरे पर अनुरक्त हैं।

आलम्बन—श्रीकृष्ण।

आश्रय—चन्द्रावली।

उद्दीपन—सखियों का वार्तालाप, वर्षा-वर्णन, ऋतु वर्णन आदि।

अनुभाव—चन्द्रावली की शारीरिक चेष्टाएँ और प्रलाप।

सात्विक भाव—चन्द्रावली का मुख पीला पड़ना, अश्रु आना आदि सात्विक भाव है।

संचारी भाव—उग्रता, स्मृति, धृति, जड़ता, उद्वेग, शंका, मूर्च्छा आदि।

उद्दीपन और अनुभाव का वर्णन सर्वथा रीतिकालीन परिपाटी में है। वर्षा और झूला का प्रसंग उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया गया। वर्षा के उपकरण चन्द्रावली के विरह को उद्दीप्त कर देते हैं। काले बादल कृष्ण, इन्द्र-धनुष बनमाल, बक पंक्तियाँ मोतियों की माला और मोरों की ध्वनि मुरली नाद का स्मरण करा देती है—

देखि घनस्याम घनस्याम को सुरति करि,
जियमें विरह-घटा घहरि-घहरि उठै।
त्योंही इन्द्रधनु-बगमाल देखि बनमाल,
मोती लट पी की जिय लहरि-लहरि उठै।

'हरिचन्द्र' मोर-पिक-धुनि सुनि वंशी नाद,
बाँकी छवि बार-बार छहरि-छहरि उठै।
देखि-देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत,
पट छोर मेरे हिय फहरि-फहरि उठै।

विरहाधिक्य में चन्द्रावली जड़-चेतन का भेद भूल जाती है। वह भँवर, हँस, सारस, कोकिल, पपीहा से अनुनय करती है कि वे कृष्ण को उससे मिला दें—

अहो भँवर तुम श्याम रंग मोहन व्रतधारी।
क्यों न कहो वा निठुर स्याम सो दसा हमारी॥

कभी वह जायसी की नागमती और हरिऔध की राधा की तरह वायु से अपने प्रियतम के पास सन्देश भेजती है—

अरे! पौन सुख भौन सबै थल गौन तिहारो।
क्यों न कहो राधिका रौन सो मौन निवारो॥

वह कदम्ब, निम्ब, अम्ब और बकुल, तमाल से प्रियतम का पता पूछती है—

अहो-अहो बन के रूख कहुँ देख्यो पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुड़ाइ कहो वह कितै सिधारो॥
अहो कदम्ब, अहो निम्ब अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यो कहुँ मन मोहन सुन्दर नन्दलाला॥

अनुभाव—

अश्रु, पुलक आदि अनुभावों का कई स्थानों पर सुन्दर वर्णन मिलता है। निम्न उदाहरण में एक साथ कई अनुभाव तथा विरह-दशाओं का समावेश हो गया है—

छरी सी, छकी, सी जड़ भई सी, जकी सी,
हारी सी, बिकी सी सो सबही घरी रहै।
बोले ते न बोलें, दृग खोलै नहिं, डोलै बैठि,
एक-टक देखै, सो सिखौना सी धरी रहै॥

हरिचन्द औरो घबराये समुझाए हाय,
　　हिचकि-हिचकि रोवै जीवित मरी रहै ।।
याद आए सखिन रोवावै दुःख कहि-कहि,
　　तो लौं सुख पावै जौ लौं मुरछि परी रहै ।।

संचारी-भाव—

जड़ता—"तू केहि चितवहि चकित मृगी सी ।"

स्मृति—"देखि घनश्याम घनश्याम की सुरति करि ।"

उग्रता—"अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो ।"

विरह की दशाएँ

विरह की निम्नलिखित दस अवस्थाएँ मानी गई हैं—

१—अभिलाषा, २—चिन्ता, ३—स्मृति, ४—गुण-कथन, ५—उद्वेग, ६—प्रलाप, ७—उन्माद, ८—जड़ता, ९—मूर्च्छा, १०—मरण ।

अभिलाषा—विरह में प्रिय-दर्शन और मिलन की अभिलाषा सदैव बनी रहती है—

बलि सांवरी सूरत मोहिन मूरत,
　　आँखिन कौं कबौं आइ दिखाइए ।
चातक सी मरैं प्यासी परी,
　　इन्हैं पानिप रूप-सुधा कबौं प्याइए ।।
पीट-पटै बिजुरी से कबौ,
　　'हरिचन्द' जू आइ इतै चमकाइए ।।
इतहूँ कबौं आइके आनन्द के घन,
　　नेह को मेह पिया बरसाइए ।।

चिन्ता—

प्राण बचैं केहि भाँतिन सौं,
　　तरसै जब दूर से देखिये कौं मुख ।

स्मृति और गुण कथन—

वह आवनि वह हँसनि छबीली, वह मुसकनि चित चोरैं ।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह, वह देखन चहुँ कोरैं ।।

उद्वेग और प्रलाप—

उद्वेग और प्रलाप से तो सारी नाटिका भरी हुई है। चन्द्रावली के सारे स्वगत-कथन उद्वेग और प्रलाप के अन्तर्गत लिये जा सकते हैं।

उन्माद और जड़ता—

"अरे छलियाँ कहाँ छिपा है ?........अरे वृक्षों बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है ? क्यों रे मोरो इस समय नहीं बोलते ? नहीं तो रात को बोल-बोल के प्राण खाये जाते थे। कहो न, वह कहाँ छिपा है ?

अहो कदम्ब, अहो अम्ब-निम्ब, अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यो कहुँ मनमोहन सुन्दर नन्दलाला॥

मूर्च्छा—

याद आए सखिन रोवावै दुख कहि-कहि,
तौ लौं सुख पावै जौ लौं मुरछि परी रहै।

मरण—

बिना प्राण प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आँखे ये खुली हो रह जायँगी।

विरही अपने प्रेम पात्र को उपालम्भ भी देते हैं। चन्द्रावली की काव्यात्मक उक्तियाँ तथा स्वगत-कथन उपालम्भों से भरे हुए हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विरह-वर्णन की दृष्टि से 'चन्द्रावली' नाटिका सफल है। चन्द्रावली विरह से तन-मन भूलकर प्रियतममय हो जाती है। 'चन्द्रावली' नाटिका जहाँ पुष्टिमार्गीय विरह-भक्ति निरूपण की दृष्टि से सफल है, वहाँ रीतिकालीन शास्त्रीय-परम्परा के विरह का भी उसमें सावयव निरूपण हुआ है। चन्द्रावली एक सामान्य विरहिणी नारी की तरह जड़-चेतन का भेद भूल कर लता वृक्षों से अपने प्रियतम का पता पूछती फिरती है। उसके विरह में मार्मिकता, अनुभूति की सच्चाई, गम्भीरता और व्यापकता है।

भाषा और काव्य-तत्व

प्रश्न १६—भाषा और काव्य तत्व की दृष्टि से 'चन्द्रावली नाटिका' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १७—"चन्द्रावली की सफलता उसके काव्य-तत्व में ही है, नाट्य तत्व में नहीं"—इस कथन की समीक्षा चन्द्रावली नाटिका की भाषा, काव्य-तत्व और नाट्य तत्व को दृष्टि में रखते हुये कीजिए।

उत्तर—'चन्द्रावली' की भाषा काव्य-माधुरी के गुणों से युक्त है। उसमें ब्रज-भाषा काव्य की समस्त विशेषताएँ मिलती हैं।

'चन्द्रावली' में भाषा के रूप

'चन्द्रावली' में दो प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है—

१—पद्य की भाषा सर्वत्र ब्रजभाषा है।

२—पद्य की भाषा में भी खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा का मिश्रण है।

पात्रानुकूलता

'चन्द्रावली' की कथावस्तु ब्रज और ब्रजराज कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित है। कथानक के सारे पात्र ब्रज-मंडल के हैं। यही कारण है कि खड़ी बोली बोलते-बोलते ब्रज-भाषा बोल जाते हैं। गद्य की भाषा में प्रायः सावधानी नहीं है। उसकी शुद्धि की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। खड़ी बोली के बीच में ब्रजभाषा का प्रयोग दोष बन गया है। निम्न उदाहरण में देखिये—

"राम राम ! मैं दौरत-दौरत हार गई या ब्रज की गऊ का हैं, साँड़ हैं, कैसी एक साथ पूँछ उठाय के मेरे संग दौरी हैं ? तापै वा निपूत सुबल को बुरो होय, और हू तुमड़ी बजाय कै मेरी ओर इन सबन को लहकाय दीनो।"

\+ \+ \+

"अरी मैया खीझ रही है कै वाहि घर के कछू और हू काम-काज हैं, के एक हाहा ठीठी ही है; चल उठि मोर सों यहीं पड़ी है।"

+ + +

"ब्रज में रहकर उससे वही बची होगी; जो ईंट पत्थर की होगी।"

+ + +

"ऐसे बादलों को देखकर कौन लाज की चद्दर रख सकती है।"

बानरस के होने के कारण भारतेन्दु का ब्रजमंडल से विशेष सम्पर्क नहीं था। इसलिए ब्रजभाषा के प्रयोग में कहीं-कहीं पर गड़बड़ी कर गये हैं। कुछ स्थलों पर पूरा वार्तालाप ही ब्रजभाषा के बीच में खड़ी बोली का आ गया है। निम्न उदाहरण में देखिए—

कामिनी—"सखी, देख बरसात भी अबकी किस धूम-धाम से आई है। मानों कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनको जीतने को अपनी सेना भिजवाई है।......................वियोगिनी को तो मानो छोटा प्रलय काल ही आया है।"

चन्द्रावली की भाषा में कहीं-कहीं पर पूर्वी प्रयोग पाये जाते हैं।

सरलता और स्वाभाविकता

'चन्द्रावली' की भाषा साहित्यिक होते हुए भी चलती हुई है। भाषा के गठन में सरलता और व्यावहारिकता है। कई स्थानों पर संस्कृत तथा अरबी-फारसी के भी प्रचलित शब्द आ गये हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को शक्ति प्रदान करता है। उदाहरण के लिए "मुझसे क्यों इतना उड़ती है', 'ईंट पत्थर की बनी है', 'नैन' लगना', 'जाके पाँव न फटी बिवाई, सो का जानै पीर पराई', 'भामिनी तै मौड़ी करी', 'भामिनी ते मोड़ी करो कोरी करी हीरा तैं, कनौड़ी करी कूल तैं" आदि को लिया जा सकता है। प्रस्तुत नाटिका में प्रायः सभी पात्र स्त्रियाँ हैं। इसलिए भाषा में विशेष सरलता और माधुर्य आ गया है।

काव्य-तत्व और नाट्य-तत्व

यदि नाट्यकला की दृष्टि से 'चन्द्रावली' की समीक्षा करें, तो वह नाटिका के शास्त्रीय लक्षणों पर खरी उतरती है। नाट्य-शास्त्र में जो लक्षण नाटिका

के बतलाये गए, उन सभी की कसौटी पर 'चन्द्रावली' नाटिका खरी उतरती है। किन्तु नाटक दृश्य-काव्य है। उसका सम्बन्ध रंगमंच से है। 'चन्द्रावली' में काव्य का प्राधान्य, हृदय के मार्मिक उद्गारों को अभिव्यक्त करने वाले स्वगत-भाषण रंगमंच की दृष्टि से दोष हैं। 'चन्द्रावली' वस्तुतः नाटकीय काव्य है। इसका पठन काव्यानन्द प्रदान करता है।

'चन्द्रावली' में घटना-वैचित्र्य का अभाव है। यह भाव-प्रधान नाटिका है। सारा कथानक प्रेम, विरह और मिलन में समाप्त होता है। स्वगत-भाषण और कथोपकथनों के बीच-बीच में आये छोटे-छोटे पद, गीत और मधुर छन्द कथानक को सुश्रृंखलित बनाते हैं। काव्य-तत्व का प्राधान्य वस्तु-विन्यास को एक श्रृंखला में बाँध देता है। इसके अभाव में घटनाहीन कथानक में एकरसता न रहती और वस्तु-विन्यास विश्रृंखल हो जाता। प्रस्तुत नाटिका का उद्देश्य पुष्टि-मार्गीय प्रेम लक्षणा-भक्ति का प्रतिपादन करना है, जिसमें भक्त का विरह चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है। प्रस्तुत नाटिका में काव्यात्मक स्वगत-कथन तथा धार्मिक पद विरह को उद्दीप्त कर चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देते हैं। चन्द्रावली के मार्मिक उद्गारों से प्रभावित होकर श्रीकृष्ण द्रवित होते हैं और उसे अपनाते हैं।

'चन्द्रावली' का सारा कथानक स्वगत-कथन और काव्यात्मक उक्तियों के द्वारा ही विकसित होता है। कला-वैचित्र्य अथवा घटना-चक्र के अभाव के कारण कथानक की गति कुछ मन्द एवं शिथिल है, परन्तु इस कमी की पूर्ति नाटिका के काव्य-तत्व और रसात्मकता से हो जाती है।

काव्य का प्राधान्य—वस्तु विन्यास के लिए साधक

'नांदीपाठ' में 'चन्द्रावली' का कृष्ण से मिलन है। इसी मिलन-फल 'चन्द्रावली' का उद्देश्य चन्द्रावली का कृष्ण से मिलन है। इसी मिलन-फल (युगल झाँकी) में नाटककार ने कल्याण की अभिलाषा की है। कथानक का प्रारम्भ प्रेम (पूर्वराग) से होता है। प्रिया जी के संकोच से कृष्ण चन्द्रावली से नहीं मिल पाते। चन्द्रावली का विरह बढ़ता हुआ उन्माद और प्रलाप की अवस्था को पहुँच जाता है। पुष्टिमार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति का चरम-विकास भी यही है। चन्द्रावली के अनन्य प्रेम से द्रवित होकर कृष्ण दर्शन देते हैं।

प्रेम, विरह और मिलन का यह कथानक काव्य-तत्व से ही सुसंगठित होता है। कथानक का प्रारम्भ नारद द्वारा चन्द्रावली के अनन्य और विलक्षण प्रेम के परिचय से होता है। नारद की वीणा से सम्बन्धित लम्बी कविता काव्य-माधुरी से युक्त है, लेकिन प्रेमोत्कर्ष में उसका कोई योग नहीं है। प्रथम अंक में 'छिपाये छिपत न नयन लगे' पद में ललिता कह देती है कि 'चन्द्रावली' कृष्ण के प्रेम में पगी है। चन्द्रावली छिपाना चाहती है, किन्तु ललिता निम्न सवैया में स्पष्ट कर देती है कि भेद छिपाने से उसे प्रिय-मिलन का आनन्द न मिल सकेगा—

हम भेद न जानिहैं जो पै कछू,
औ दुराव सखी हम में परिहै।
कहि कौन मिलैहै पियारे पिये,
पुनि कारज कासों सबै सरिहै।

यह पद चन्द्रावली के हृदय में ललिता के प्रति विश्वास उत्पन्न कर देता है और वह निम्न पदों में अपना प्रेम प्रकट देती है—

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तबसे भये पराये हरि सों जब सों जाइ जुरे॥

+ + +

नैना वह छवि नाहिन भूले।
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नयन कमल दल फूले।

+ + +

मनमोहन तें बिछुरी जब सों,
तन आँसुन सों सदा धोवति हैं।

उपर्युक्त पद्यांश चन्द्रवली के हृदय के अनन्य-प्रेम को प्रकट करने में सहायक हैं।

दूसरे अंक में काव्य-माधुरी युक्त सवैयों की भरमार है। चन्द्रावली की वियोग-जन्य वेदना, विरह-उन्माद, प्रलाप आदि की अभिव्यक्ति इतनी मार्मिकता से गद्य में नहीं हो सकती थी। प्रत्येक सवैया चन्द्रावली के विरह को विकसित करता है।

"जग जानत कौन है प्रेम बिथा" में चन्द्रावली जग की दशा पर झींकती है, जो प्रेम-व्यथा का महत्व नहीं आँकती। ऐसी दशा में वह 'कासों कहे, कहे, कौन पुनि माने बैठि रही सब रोय' की स्थिति में हो जाती है। चन्द्रावली को सदैव "जिय सूधी चितौनि को साधै रही" किन्तु उसके प्रियतम "सदा बातन में भी अनखाते रहे।" वह प्रियतम को उपालम्भ भी देती है कि यदि वे मिलने में स्वतन्त्र नहीं थे, तो प्रेम करके उसे अपनाया ही क्यों ?

पहिले मुसुकाय लजाय कछू,
क्यो चितै मुरि मो तन छाम कियो।
+ + +
मनमाँहि जो तोरन हूँ की हुती,
अपनाइकै क्यों बदनाम कियो॥
+ + +
कित को ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइकै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ॥

इस अङ्क के सारे काव्यांश स्वगत कथन के रूप में हैं। इसमें चन्द्रावली का विरह विकास पाता हुआ चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है। वह बन, लता और कुंजों से प्रियतम का पता पूछती है। इस प्रसंग में निम्न पद सार्थक हैं—

अहो-अहो बन के रूख कहूँ देख्यो पिय प्यारे।
मेरो हाथ छुड़ाइ कहो वह कितै सिधारे॥
अहो कदम्ब अहो निम्ब, अम्ब अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यो कहुँ मनमोहन सुन्दर नन्दलाला॥
+ + +
अरे पौन सुख-भौन सबै थल गौन तुम्हारो।
क्यों न कहो राधिका रौन सौं मौन निवारो॥

तीसरे अंक के वर्षा-वर्णन में चन्द्रावली मृत्यु की दशा को पहुँच जाती है। वह जीवित रहना नहीं चाहती। इसमें माधवी और चन्द्रावली के कहे हुए काव्यात्मक अंश मुख्य-संवेदना को और अधिक तीव्रता प्रदान करते हैं। चतुर्थ

अंक में योगिन का गाया हुआ लम्बा पद उसके यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने में सहायक है—

शोभा लखि मोहत नारी-नर वारि फेरि जल सबहि पियैं।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत काँधे बीन लियैं ।।

इसी अंक में यमुना का वर्णन काव्य की कसौटी पर सुन्दर होने पर भी वस्तु-संविधान की दृष्टि से निरर्थक है। आगे इसी प्रकार योगिन का गाया हुआ लम्बा गीत 'पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिर धारी' भी वस्तु-संविधान की दृष्टि से कोई उपयोगिता नहीं रखता। काव्य की दृष्टि से उसका महत्त्व अवश्य है। आगे के सारे पद वस्तु-विन्यास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'जोगिन रूप सुधा की प्यासी' पद से स्पष्ट हो जाता है कि योगिन वेश में श्री कृष्ण ही हैं। चन्द्रावली के गाये हुए पद उसके हृदय की प्रेम-विह्वलता और प्रेम-अनन्यता को प्रकट करते हैं। 'नीके निरखी निहारि नैन भरि नैनन को फल आज लहौरी' तथा 'परमारथ' स्वारथ पद पुष्टिमार्गीय भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'चन्द्रावली' के काव्य-तत्व का आधिक्य वस्तु-विन्यास के विकास में साधक बन कर उपस्थित हुआ है। उसकी काव्यमाधुरी अनूठी है।

प्रेम और भक्ति का स्वरूप

प्रश्न १८—चन्द्रावली में वर्णित प्रेम और भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

प्रश्न १९—"चन्द्रावली नाटिका में वर्णित प्रेम का रूप भारतेन्दु के भक्ति-भाव और उनके धार्मिक विचारों की प्रतिच्छाया है"—विश्लेषण कीजिये।

अथवा

प्रश्न २०—"चन्द्रावली नाटिका भारतेन्दु के प्रेम-सम्बन्धी विचारों का दर्पण है"—इसे नाटिका के आधार पर सिद्ध कीजिए।

अथवा

प्रश्न २१—"चन्द्रावली नाटिका में जिस प्रेम का चित्रण किया गया है, वह भारतेन्दु जी के अपने भक्ति-भाव का प्रतिबिम्ब है। यह उनके धार्मिक जीवन की प्रतिच्छाया है।"

आचार्य श्यामसुन्दरदास के उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न २२—आचार्य बल्लभ का पुष्टि-मार्गीय प्रेम-तत्व ही भारतेन्दु जी की चन्द्रावली में प्रतिबिम्बित हुआ है।"—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिये।

उत्तर—'चन्द्रावली' में वर्णित प्रेम भारतेन्दु के भक्ति-भाव और उनके धार्मिक विचारों की प्रतिच्छाया है। वह उनके व्यक्तित्व का ही एक पक्ष और प्रेम सम्बन्धी विचारों का दर्पण है। चन्द्रावली का प्रेम संसार को स्पर्श करता हुआ भी उससे परे है। उसमें अलौकिक प्रेम की झलक मिलती है।

वल्लभ का पुष्टि मार्गीय प्रेम-तत्व ही 'चन्द्रावली' में भारतेन्दु की रागानुगा-भक्ति का पोषण करता है।

पुष्टि-मार्गीय भक्ति का स्वरूप

बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित पुष्टि-मार्गीय भक्ति में 'पुष्टि' का अर्थ 'कृपा', 'पोषण' या 'अनुग्रह' है। इसके अनुसार जीव का कल्याण प्रभु की कृपा पर ही अवलम्बित होता है—'कृष्णानुग्रहरूपा पुष्टिः'—भगवान की कृपा पाने के लिए ही जीव उनसे प्रेम करता है। भगवान् की कृपा ही साधन और फल दोनों है। पुष्टि मार्गीय भक्ति में भगवान् भक्त की योग्यता और अयोग्यता का ध्यान किये बिना उसके प्रेम की तीव्रता को देखते हैं। पुष्टि-मार्गीय भक्ति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१—जीव का कल्याण भगवान की कृपा पर है।

२—भगवान की कृपा ही साधन और फल दोनों है।

३—प्रभु समर्पण और प्रेम-विह्वलता से ही द्रवित होकर कृपा करते हैं।

४—श्रीकृष्ण का साक्षात्कार, उनकी लीलाओं का आनन्द, उनकी लीला भूमि वृन्दावन के दर्शन, नन्द-यशोदा तथा गोप-गोपी जनों का भाव रखना और सायुज्य भक्ति पाना ही भक्त का लक्ष्य रहता है।

५—शुद्ध पुष्टि-भक्ति के स्नेह; आसक्ति तथा व्यसन तीन तत्व हैं।

६—लौकिक पदार्थों से भक्त के बन्धन छूट जाते हैं।

७—भक्त की दुनिया कृष्णमय हो जाती है।

८—वल्लभ सम्प्रदाय में राधा को ठकुरानी (स्वामिनी) का पद प्राप्त है। वे कृष्ण का ही स्वरूप हैं।

९—राधा कृष्ण की युगल-मूर्ति की उपासना का वल्लभ-सम्प्रदाय में महत्व है।

१०—वल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम की अनन्यता के लिए विरह को कसौटी माना गया है।

११—पुष्टि-मार्गीय भक्ति में कृष्ण के अतिरिक्त कृष्ण से सम्बन्धित वस्तुओं और स्थानों को भी विशेष महत्व दिया गया है।

भारतेन्दु बल्लभ-सम्प्रदाय की पुष्टि-मार्गीय रागानुगा प्रेम लक्षणा भक्ति के उपासक थे—

भारतेन्दु राधा कृष्ण की युगल-मूर्ति के उपासक थे। 'चन्द्रावली' का समस्त कथानक युगल-मूर्ति की प्रेम लीलाओं तथा विरह से भरा हुआ है। भारतेन्दु का ईश्वर के प्रति जो दृष्टिकोण था, वही इस नाटिका में प्रदर्शित हुआ है। भारतेन्दु पुष्टि-मार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति को बाल्यकाल से अपना चुके थे। उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा है—

सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के।

+ + +

हम तो मोल लिए या घर के।

भारतेन्दु के परिवार में युगल मूर्ति की सेवा होती आई थी। वे स्वयं 'तदीय नामांकित वैष्णव' थे। उन्होंने 'तदीय सर्वस्व' में 'नारदीय-सूत्र' की व्याख्या करते हुए कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति प्रदर्शित की है—

"जीवन का परम फल तुम्हारा अमृतमय प्रेम है, यदि वही नहीं, तो फिर यह क्यों ?"

भारतेन्दु जी कृष्ण ही को संसार की समस्त वस्तुओं का मूल कारण मानते हैं। वे वेदों से भी पूजित हैं। उनके अनुसार राधा कृष्ण की ही प्रेम-मयी और प्राणमयी मूर्ति हैं। इस प्रकार प्रेम-मूर्ति श्रीकृष्ण ही भारतेन्दु की भक्ति का आधार हैं।

भारतेन्दु व्यवहार और सिद्धान्त दोनों ही दृष्टियों से कृष्ण के परम भक्त थे। भारतेन्दु बल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। सं० १९२० में उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की। इस समाज के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

१—इसका उद्देश्य शुद्ध-प्रेम की वृद्धि करना था।

२—प्रत्येक वैष्णव इसमें प्रवेश पा सकता था।

३—इस समाज में प्रवेश से पहले प्रत्येक वैष्णव प्रतिज्ञा करता था कि हम केवल परम प्रेममय भगवान श्री राधिका-रमण का ही भजन

करेंगे। बड़ी-से-बड़ी विपत्ति से हम अन्याश्रय न करेंगे। युगल रूप में हम भेद दृष्टि न रखेंगे।

भारतेन्दु जी ने 'तदीय समाज' की स्थापना के तीन वर्ष पश्चात् (सं० १९२३ में) 'चन्द्रावली नाटिका' की रचना की। अतएव यह स्वाभाविक था कि यह नाटिका उनके धार्मिक और प्रेम सम्बन्धी विचारों का प्रतिबिम्ब बन जाती। चन्द्रावली का प्रेम कृष्ण-प्रेम की उज्ज्वल परम्परा का प्रेम है।

चन्द्रावली का प्रेम और भक्ति वल्लभाचार्य की पुष्टि-मार्गीय रागानुगा प्रेमा-भक्ति को कसौटी पर—

भारतेन्दु के प्रेम में चातक-प्रेम की अनन्यता और आदर्श है। चन्द्रावली लोक-लाज और कुल की मर्यादा छोड़कर कृष्ण-मिलन को आतुर हो जाती है। उसके लिए समस्त जड़-चेतन विश्व कृष्णमय है। वह मार्ग की कठिनाइयों की चिन्ता किये बिना कृष्ण से प्रेम करती है।

चन्द्रावली के समर्पण में भारतेन्दु की व्यक्तिगत रागानुगा प्रेम-लक्षणा भक्ति का ही स्वरूप स्पष्ट हुआ है—

"लो तुम्हारी 'चन्द्रावली' तुम्हें समर्पित है। अंगीकार तो किया ही है, इस पुस्तक को भी उन्हीं की कानि सैं अंगीकार करो! इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है।"

यह समर्पण स्पष्ट करता है कि 'चन्द्रावली' का प्रेम पारलौकिक प्रेम है और उसमें भारतेन्दु की प्रेम और भक्ति भावना का ही प्रतिबिम्ब है। नांदीपाठ में भी यही भावना व्यक्त हो रही है—

भरति नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति, अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥
नेति नेति तत्-शब्द प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चन्द्रावली चकोर, श्रीकृष्ण करो कल्यान॥

विष्कम्भक में प्रेमा-भक्ति का प्रतिपादन भारतेन्दु जी ने शुकदेव से निम्न प्रकार कराया है—

"वह जो परम प्रेम अमृतमय एकान्त भक्ति है, जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञानादि अंधकार नाश हो जाते हैं और

जिसके चित्त में आते ही संसार का निगड़ आप से आप खुल जाता है, वह किसी को नहीं मिली; मिले कहाँ से? सब इसके अधिकारी भी तो नहीं.... नहीं-नहीं व्रज गोपियों ने उन्हें भी जीत लिया है। उनका कैसा विलक्षण प्रेम है—अकथनीय और अनुकरणीय, क्योंकि जहाँ माहात्मय ज्ञान होता है, वहाँ प्रेम नहीं होता। जहाँ पूर्ण प्रेम होता है, वहाँ माहात्म ज्ञान नहीं होता।"

नारद के कथन में भी प्रेम की यही अनन्यता है। वे परम प्रेमानन्दमयी ब्रज वल्लभी लोगों का दर्शन करके अपने को कृतार्थ मानते हैं। वे गोपियों की विरह-दशा को देखते हुए अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं, और वर्षों वहाँ पड़े रहते हैं। वे शुकदेव से कहते हैं—

"....श्रीमती की कोई बात ही नहीं, वे तो श्रीकृष्ण ही हैं, लीलार्थ दो हो रही हैं; तथापि सब गोपियों में श्रीचन्द्रावली के प्रेम की चर्चा आजकल ब्रज के डगर-डगर में फैली हुई है। अहा! कितना विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता-पिता, भाई-बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भी भय है, तथापि श्रीकृष्ण से जल के दूध की भाँति मिल रही हैं। लोक-लाज गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते। किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिल ही लेती हैं।"

पुष्टि-मार्गीय भक्ति में प्रेम की अनन्यता के लिए विरह को कसौटी माना गया है। चन्द्रावली का विरह इस भक्ति के अनुरूप ही है। चन्द्रावली वियोग में उन्माद और प्रलाप की अवस्था को पहुँच जाती है। उसके लिए समस्त जड़-चेतन प्रियतममय हो जाते हैं। समस्त द्वितीय और तृतीय अंक में विरह का जो मार्मिक वर्णन हुआ है, वह पुष्टि-मार्गीय भक्ति की कसौटी पर खरा उतरता है। चन्द्रावली के प्रलाप और स्वगत कथनों में विरह चरमावस्था में पहुँच जाता है। चन्द्रावली के सारे प्रलाप कृष्ण की कृपा-अनुग्रह प्राप्त करने के लिए ही हैं। पुष्टिमार्ग में भगवान केवल भक्त के प्रेम की तीव्रता से ही उसकी भक्ति को आँकते हैं। चन्द्रावली संसार के समस्त कार्यों और धन्धों को त्याग कर निष्काम भक्ति करती है। कृष्ण ही उसका सर्वस्व है। चन्द्रावली की वियोग-विह्वलता देखकर कृष्ण आप-ही-आप उसके प्रेम की प्रशंसा करते हैं—

"निःसन्देह इसका प्रेम पक्का है। देखो, मेरी सुधि आते ही इसके कपोलों पर कैसी एक साथ जरदी दौड़ गई....अब तो मुझसे नहीं रहा जाता। इससे मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं।"

भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के लिये भक्त का उनके विरह में क्षीण होना ही पुष्टि-मार्गीय भक्ति का चरम लक्ष्य है। 'चन्द्रावली' में भारतेन्दु का उद्देश्य इसी भक्ति को दिखाना है।

पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन चन्द्रावली में स्थान-स्थान पर मिलता है। कृष्ण पुष्टि-मार्गीय भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

"तौ प्यारी मैं तोहि छोड़ि कै कहाँ जाऊँगो, तू तौ मेरी स्वरूप ही है। यह सब प्रेम की लीला करिबे को मेरी लीला है....मैं निष्ठुर नहीं हूँ। मैं अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ। परन्तु मोहि निहचै है कै हमारे प्रेमिन को हम सों हूँ हमारो विरह प्यारो है........प्यारी, छिमा करियौ, हम तौ तुम्हारे सबन के जन्म-जन्म की रिनियाँ हैं।"

ललिता और विशाखा के कथनों में भारतेन्दु जी पुष्टिमार्गीय भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

"सच हैं युगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनन्द का अनुभव और किसको है?"

ललिता

"सखो, पीतम तेरो, तू पीतम की, हम तो तेरी टहलनी हैं। यह सब तो तुम सबन की लीला है। या मैं कौन बोले और बोले कहा जो समझै तौ बोलै—या प्रेम की तो अकथ कहानी है। तेरे प्रेम को परिलेख तो टकसार होयगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ ही में न आवैगो! तू धन्य, तेरो प्रेम धन्य, या प्रेम के समझिबे बारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़े सो धन्य। तोमें और स्वामिनी मैं भेद नहीं है। ताहू मैं तू रस की पोषक ठैरी। सब, अब हमारो दोऊन सों यही बिनती है कि तुम दोनों गलबाहीं दैके बिराजो और हम जुगुल जोड़ी के दर्शन करि आज नेत्र सफल करें।"

शुद्ध-पुष्ट भक्ति की स्नेह, आसक्ति और व्यसन तीन अवस्थाएँ होती हैं 'चन्द्रावली' के विष्कम्भक तथा प्रथम-अंक में स्नेह; द्वितीय अंक में आसक्ति

चतुर्थ अंक में कृष्ण-मिलन की व्यसन है। ललिता का निम्न कथन पुष्टि मार्गीय भक्ति का ही भाष्य है—

अलख गति पिया प्यारी की।
को कहि सकत लखत नहिं आवै तेरी गिरधारी की।
बलि-बलि बिछुरनि हँसनि रूठनि ही यारी की।
त्रिभुवन की सब रति गति मति छबि या बलिहारी की।

पुष्टि-मार्गीय भक्ति में कृष्ण के अतिरिक्त कृष्ण से सम्बन्धित वस्तुओं को भी अधिक महत्व दिया गया है। चन्द्रावली कृष्ण से सम्बन्धित समस्त स्थानों और वस्तुओं का स्मरण करती हुई अपने प्रेम का प्रदर्शन करती है। भारतेन्दु जी ने अपने धार्मिक विश्वासों के अनुरूप ही 'चन्द्रावली' में भगवान की लीला, भगवान की कृपा, वृन्दावन, गोपी-जन, गिरराज, यमुना आदि के महत्व का वर्णन किया है—

राधा-चन्द्रावली कृष्ण ब्रज-जमुना-गिरिवर मुखहिं कहौरी।
जनम-जनम यह कठिन प्रेम-व्रत हरीचन्द इकरस निबहौरी।

चन्द्रावली के लिए सारा संसार ही कृष्णमय है। वह वनदेवी को ही कृष्ण समझ लेती है और पागलों की तरह वृक्ष-लतादि से कृष्ण का पता पूछने लगती है। वह केले के वन को "प्यारे ही को धाम है" कह देती है। संध्या उसकी दशा को स्पष्ट करती हुई कहती है—

पूछत सखी कै एकै उत्तर बतावति;
जकी सी एक रूप आज श्यामा भई है!

'चन्द्रावली' नाटिका के कथानक का अन्त युगल छवि की झाँकी से होता है। वल्लभ-सम्प्रदाय के वैष्णवों में युगल छवि के दर्शन को विशेष महत्व दिया गया है। कृष्ण और चन्द्रावली गलबाँही डालकर बैठते हैं। विशाखा और ललिता अभिनन्दन करती हैं। इसमें भारतेन्दु की अपनी भक्ति-भावना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है—

नैके निरखि निहार नैन भरि नैननि को फल आजु लहौरी।
जुगुल रूप छवि अमित माधुरी, रूप-सुधा रस-सिन्धु बहौरी॥

इनहीं सों अभिलाख करि इहीं को नितहि चहोरी।
जौ नर तनहु सफल करि चाहौ इनहीं के पद-कंज गहोरी॥
करम-ज्ञान ससार पाल तजि बरु बदनामी कोटि सहौरी।
इनहीं के रस मस्त मगन नित इनहीं के ह्वै जगत रहोरी॥

भगवान स्वयं अपने अनुग्रह की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

"प्यारी ! और जो इच्छा होय सो कहौ, काहे सों कै जो तुम्हें प्यारा है सोई हमें हुँ प्यारो है।"

प्रश्न २३—"चन्द्रावली नाटिका का सारा कथानक प्रेम-विरह और मिलन की कहानी है।"—इस कथन को ध्यान में रखते हुए इस नाटिका की आलोचना कीजिए।

उत्तर—चन्द्रावली में प्रेम, विरह और मिलन की चर्चा

'चन्द्रावली' नाटिका में चन्द्रावली के प्रेम, विरह और कृष्ण मिलन का वर्णन है। आदि से लेकर अन्त तक सारा कथानक चन्द्रावली की प्रेम चर्चा से ही गठित हुआ है। प्रेम के दोनों पक्ष, संयोग-शृंगार और वियोग-शृंगार, संयोग के उद्दीपन तथा वियोग की समस्त दशाओं का विस्तार से वर्णन है। शुकदेव और नारद के सम्भाषण में चन्द्रावली के अनुपम प्रेम का महत्व प्रतिपादित होता है। यहीं से कथानक प्रारम्भ होता है। चन्द्रावली और ललिता के वार्तालाप से चन्द्रावली के असीम प्रेम का पता लगता है। इसके पश्चात् तीसरे अङ्क तक चन्द्रावली के प्रलापों में विरह-दशाओं के समस्त रूप सामने आ जाते हैं। 'चन्द्रावली' संयोग के समय का स्मरण भी करती है। वर्षा और झूला के प्रसंग चन्द्रावली के प्रेम-विरह को उद्दीप्त कर देते हैं। चौथे अङ्क में फलागम के रूप में चन्द्रावली का श्रीकृष्ण से मिलन होता है। सारा कथानक प्रेम-विरह और मिलन में सुशृंखलित हुआ है। अब हम इस पर सूक्ष्म रूप से विचार करेंगे।

प्रेम-विरह और मिलन के अनुसार वस्तु-संविधान

'चन्द्रावली' का कथानक चार अंकों में संगठित है। प्रस्तावना में शुकदेव के भावमय और प्रेममय स्वरूप की झाँकी सामने आती है। उनके रूप में जैसे प्रेम-पुंज ने ही शरीर धारण कर लिया हो—

अति कोमल सब अंग रंग साँवरौ सलोना।
घूँघर वाले बालन पै बलि बारौं टोना॥
भुज विशाल, मुखचन्द झलमले नैन लजौहैं।
जुग कमान सी खिची गड़त हिय में दोउ भौंहैं॥
छवि-लखन नैन चित नहिं टरत शोभा नहिं कहि जात है।
मनु प्रेम-पुंज ही रूप धरि आवत आजु लखात है॥

प्रथम अंक से पहले 'प्रेम सुख नामक विष्कम्भक' में नारद गोपियों के प्रेम के साथ चन्द्रावली के अनन्य प्रम का परिचय देते हैं। यहाँ चन्द्रावली के लौकिक प्रेम के साथ में आध्यात्मिक प्रेम की भूमिका प्रस्तुत हो जाती है—

"गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
जिन तृन-सम कुल-लाज निगड़ सब तोर्यो हरि-रस माहीं।
जिन निज बस कीने नंदनन्दन बिहरीं दै गलबाहीं।
सब सन्तन के सीस रहौ इन चरन छत्र की छाहीं॥"

\+ \+ \+

"………तथापि सब गोपियों में भी चन्द्रावली के प्रेम की चर्चा आजकल ब्रज के डगर-डगर में फैली हुई है। अहा! कैसा विलक्षण प्रेम है। यद्यपि माता-पिता, भाई बन्धु सब विरोध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भय है, तथापि श्रीकृष्ण से जल में दूध की भांति मिल रही हैं। लोक-लाज, गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते। किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिली ही रहती हैं।"

प्रथम अङ्क—

इस अक में चन्द्रावली और उसकी सखी ललिता के वार्तालाप द्वारा यह प्रकट होता है कि चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति प्रेम है। चद्रावली पहले अपने प्रेम को छिपाती है, किन्तु ललिता के आग्रह पर वह अपना प्रेम प्रकट करती हुई कहती है—

"………सखी, मैं क्या करूँ, मैं कितना चाहती हूँ कि वह ध्यान भुला दूँ पर उस निठुर की छवि भूलती नहीं; इसी से सब जान जाते हैं।"

चन्द्रावली के निम्न कथनों से उसके हृदय की प्रेम-विह्वलता और प्रेम-अनन्यता प्रकट हो रही है—

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सौं भये पराये, हरिसौं जबसे जाय चुरे॥

+ + +

नैना वह छवि नाहिं न भूले,
परबस भये फिरत हैं नैना एक टक टरत न टारे।
हरि ससि-मुख ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे॥

+ + +

मन मोहन तें बिछुरी जब सों,
तन आँसुन सों सदा धोवति हैं।
'हरिचन्द' जू प्रेम के फन्द परी,
कुल की कुल लाजहि खोवति हैं॥
दुख के दिन कौ कोउ भाँति बितै,
विरहागम रैनि संजोवति हैं।
तुमहीं अपुनी दशा जानें सखी,
निसि सोवति हैं किधौं रोवति हैं॥

+ + +

"........मुझे कुछ इच्छा नहीं है और न कुछ चाहती हूँ। तो भी मुझको उनके वियोग का बड़ा दुःख होता है।"

प्रथम अंक के अन्त तक स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रावली का कृष्ण से अनन्य प्रेम है। उसका कृष्ण से मिलन हो चुका है। उसके कथनों से मिलनस्मृति प्रकट होती है। चन्द्रावली का प्रेम निस्वार्थ-प्रेम है, जो भौतिक धरातल से उठाकर आध्यात्मिक (ईश्वर-प्रेम) की ओर ले जाने वाला है। ललिता के निम्न कथन से यह तथ्य स्पष्ट है—

"..........तू धन्य है। संसार में जितना प्रेम होता है, कुछ इच्छा लेकर होता है और अन्य लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं, पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख में सुख मानती है। यह तेरी चाल

संसार से निराली है। इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मण्डल को पवित्र करने वाली है।"

द्वितीय अङ्क—

'प्रियान्वेषण' नाम के इस अंक में विरह ही विरह है। चन्द्रावली अपना विरह-निवेदन करती है। वनदेवी, संध्या और वर्षा से चन्द्रावली के वार्त्तालाप में विरह अभिव्यक्त होता है। विरहोन्माद में चन्द्रावली कृष्ण को खोजती फिरती है। दूसरे अंक के कथानक का प्रारम्भ चन्द्रावली के विरह-जनित उद्गारों से होता है। वह अपनी प्रेम पीड़ा किससे कहे, उसकी दशा को कौन सुनेगा और समझेगा ? जो कुछ उस पर बीत रही, उसे वह ही सहन करेगी—

जग जानत कौन है प्रेम-विथा,
केहिसों चरचा या वियोग की कीजिए।
पुनि को कही मानै कहा समुझै, कोउ,
क्यों बिन बात की रारहि लीजिए।
नित जो 'हरिचन्द' जू बीते सहै,
बकिकै जग क्यों परतीतहि कीजिए।
सब पूछत मौन क्यों बैठि रही,
पिय प्यारे तिन्हहि का ऊतरु दीजिए।।

प्रियतम प्रेम लगाकर उसे भुला बैठे। यदि उनको ऐसा ही करना था, तो उन्होंने अपनाकर उसे बदनाम क्यों किया—

पहिले मुसुकाइ लजाय कछू,
क्यों चितैं मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइकै प्रीति,
निबाहन को क्यों कलाम कियो।।
'हरिचन्द' भये निरमोही इतै,
निज नेह को यों परिनाम कियो।
मन माहिं जो तोरन हूँकी हुती,
अपनाइकै क्यों बदनाम कियो।।

यह तो उसके नेत्रों का ही दोष है, जो उससे बिन पूछे ही कृष्ण के हो गये। उनका रोना व्यर्थ है। उन्हें अपनी करनी का फल चखना ही पड़ेगा—

क्यों अब रोइ के प्राण तजौ,
अपने किये को फल क्यों नहिं चाखौ।

प्रियतम से बिछुड़कर चन्द्रावली के लिए सारा जग सूना हो गया—

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिए केहि देखिए का।

'चन्द्रावली' का विरह उन्माद की अवस्था को पहुँच जाता है। उसे जड़-चेतन का ज्ञान नहीं रहता। वह कदम्ब, निम्ब, अम्ब, बकुल, तमाल, कुंजलता और यमुना से प्रियतम का पता पूछती है। विरह की चरमावस्था में पहुँच कर उसके लिए जगत और जड़-चेतन सभी प्रियतममय ही हो जाते हैं—

वर्षा—कहाँ चली सजि कै,
चन्द्रावली—पियारे सों मिलन काज—
वर्षा—कहाँ तू खड़ी है,
चन्द्रावली—प्यारे ही को यह धाम है।
वर्षा—कहा कहे मुखसौं—
चन्द्रावली—पियारे प्रान प्यारे—
वर्षा—कहा काज है,
चन्द्रावली—पियारे सो मिलन मोहि काज है—
वर्षा—मैं हूँ कौन बोल तौ—
चन्द्रावली—हमारे प्रान प्यारे हौ न !
वर्षा—तू है कौन ?
चन्द्रावली—प्रीतम पियारो मेरो नाम है।

विरह-विह्वलता में चन्द्रावली अनुनय करती है कि उनका प्रियतम अपनी साँवरी छवि आकर दिखादे—

बलि साँवरी सूरत मोहनी मूरत,
आँखिन को कबों आई दिखाइए।

चाहे, संसार उसकी कुचर्चा करे, किन्तु वह सारे संकोच छोड़कर नेत्र भर के प्रिय की छवि देखने को आतुर है—

चार चबाइन कौ चहूँ ओर सों,
सोर मचाय पुकारन दीजिए।
छाँड़ि संकोचन चन्द्र मुखे,
भरि लोचन आजु निराहन दीजिए।

विरह सागर में निमग्न होकर चंद्रावली अपने को भूल जाती है। वह प्रियतम को प्रेममय ताने देती है। कभी उनको 'झूठन कौ सरताज' और कभी 'मोहन प्यारे झूठे' कहती है।

पशु-पक्षियों से प्रियतम का पता पूछती हुई चंद्रावली थक जाती है। उसे कोई उत्तर नहीं मिलता। वह निराश होकर कहती है—

कोउ नहि उत्तरु देत, भए सबही निरमोही।
प्राण पियारे अब बोलौ, कहाँ खोजों तोही॥

इसके पश्चात् मिलने के क्षणों का स्मरण करती हुई वह प्रलाप करती है "....प्यारे! अब बहुत भई, अब सही नहीं जाती। मिलना हो तो जीते जी मिल जाओ। हाय! जी भर आँखों से देख भी लिया होता, तो जी का उमाह निकल गया होता। मिलना तो दूर, मैं तो मुँह देखने को तरसती थी। कभी सपने में भी गले न लगाया....इन घर वालों और बाहर वालों के पीछे कभी उनसे रो रोकर अपनी विपत भी न सुनाई कि जी भर जाता। लो घर वालों और बाहर वालों, ब्रज को सम्हालो। मैं तो अब यहीं...."

दूसरे अंक के 'भेद-प्रकाशन' अंकावतार में सन्ध्या चंद्रावली का पत्र लेकर कृष्ण के पास चलती है, जो मार्ग में गिर जाता है। वह चम्पकलता को मिलता है। इसमें चंद्रावली के प्रेम-विरह का प्रकाशन पूर्ण रूप से हो जाता है।

तीसरे अंक के प्रारम्भ में विरह ही विरह है। वृन्दावन का वातावरण और झूला का प्रसंग चंद्रावली के विरह को उदीप्त कर देता है। काममंजरी, माधवी और विलासिनी चंद्रावली से कृष्ण को मिलाने का निश्चय करती हैं। माधवी प्यारी जू को मनाइबे का जिम्मा लेती है, काममंजरी लाल जू

को मनाने का भार लेती है और माधवी चन्द्रावली के घर वालों को समझाने का कार्य लेती है। यहीं से विरह के पश्चात् मिलन की आशा होने लगती है।

चौथे अंक में श्रीकृष्ण योगिन के वेश में चन्द्रावली की बैठक में पधारते हैं। चन्द्रावली को शंका होने लगती है कि योगिन-वेश में कहीं उसके प्रियतम हो तो नहीं हैं। चन्द्रावली उन्माद में गाते-गाते मूर्च्छित होकर गिरना चाहती है। कृष्ण उसकी प्रेम-विह्वलता और अनन्यता से द्रवित होकर उसे सम्हाल लेते हैं। इसी समय स्वामिनी जी की भी आज्ञा मिल जाती है। कृष्ण और चन्द्रावली का मिलन हो जाता है। प्रेम और विरह के पश्चात् कथानक का पर्यवसान मिलन में होता है।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि चन्द्रावली नाटिका का सारा कथन प्रेम-विरह और मिलन में संगठित हुआ है। चन्द्रावली के प्रेम का परिचय उसके स्वगत कथनों से मिल जाता है। उसका विरहोन्माद और प्रलाप वस्तु-संगठन को सुश्रृङ्खलित बनाता है। कथानक का प्रारम्भ प्रेम-परिचय से होता है, प्रेम का विकास विरह-वर्णन में हुआ है। जहाँ चन्द्रावली आत्महत्या का विचार करती है, प्रेम चरमसीमा पर पहुँच जाता है। इसके पश्चात् कथा का उतार प्रारम्भ होता है और शीघ्रता के साथ श्रीकृष्ण और चन्द्रावली के मिलन के रूप में फलागम हो जाता है। प्रेम-विरह, और मिलन की रसात्मकता कथा को एक श्रृङ्खला में बाँधे रहती है। चन्द्रावली के प्रेम, विरह और मिलन का कथानक भौतिक धरातल से उठाकर आध्यात्मिक प्रेमजगत में ले जाता है।

प्रश्न २४—"चन्द्रावली में सामन्तीय समाजव्यवस्था की परम्परा के प्रेम की अभिव्यक्ति शास्त्रीय पद्धति में हुई है, किन्तु उसकी विषय-वस्तु में वैष्णव चिंतन है।" इस कथन की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

उत्तर—सामन्ती युग की अफीमची निद्रा से आधुनिक चेतनामय नवीनोन्मेष से जन-जीवन अँगड़ाई ले रहा था। सामन्तीय व्यवस्था के अवशेष शेष थे। नाटक का शास्त्रीय-पक्ष सामन्तीय मर्यादा में आबद्ध था। कोई उच्च कुलीन सामन्त या देवता नाटक का नायक हो सकता था। काव्य में भक्ति-

काल की भक्ति भावना का स्रोत भी सूखा नहीं था। भारतेन्दु ने अपने नाटकों में दरबारी-संस्कृति के साथ भक्ति को भी स्वीकार किया। भारत की सामन्त-वादी व्यवस्था पर अचानक पूँजीवादी विदेशी-व्यवस्था का अधिकार हो गया। नव-जागरण ने मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया। पुनर्जागरण से भारतेन्दु ने देश भक्ति और भारतीय चिन्तनधारा से वैष्णव-भक्ति ग्रहण की। भारतेन्दु की काव्य-अभिव्यक्ति सामाजिक अवशेषों के प्रभाव से जहाँ शास्त्रीय परम्परा में हुई, वहाँ नवजागरण ने उसे समाज-सुधार की भावना की ओर भी आकर्षित किया। भारतेन्दु की 'चन्द्रावली' नाटिका में विषय-वस्तु वैष्णव भक्ति को प्रवृत्त करती है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति शास्त्रीय परम्परा में हुई है। लौकिक दृष्टि से चन्द्रावली का प्रेम सामन्ती परम्परा के प्रेम से ऊपर नहीं उठ पाया है।

चन्द्रावली में प्रेम का विशद और आदर्श रूप

स्त्री-प्रेम का विशद और आदर्श वर्णन 'चन्द्रावली' में मिलता है। रीति-कालीन प्रेम और विरह के वर्णन में जहाँ वासना की प्रधानता रहती थी, वहाँ 'चन्द्रावली' का प्रेम और विरह भक्तिमय है। रीतिकाल की सामन्ती व्यवस्था में परकीया प्रेम की प्रधानता थी, किन्तु चन्द्रावली परकीया नहीं है। वह भी कृष्ण की पत्नी है। किन्तु सामन्ती प्रभाव के कारण चन्द्रावली का प्रेम व्यक्ति भावना से ऊपर नहीं उठ पाया है। चन्द्रावली ऐसे पुरुष की पत्नी है, जिसकी बड़ी पत्नी पहले से है। उसकी अनुमति से चन्द्रावली अपने प्रियतम को पाती है। 'चन्द्रावली' में प्रेम विवाह के पूर्व का है। जो दर्शन, गुण, श्रवण या गली और कुञ्जों में अचानक होने से पूर्वराग के अन्तर्गत है। इस प्रेम पर राजाओं के अन्तःपुर में भोग-विलास और रंग-रहस्य के प्रेम का प्रभाव है, किन्तु भारतेन्दु चन्द्रावली को स्वकीया के रूप में उपस्थित कर इसे दाम्पत्य-प्रेम का रूप देने का प्रयास करते हैं। यदि इस पर से पुष्टि-मार्गीय प्रेम-लक्षणा भक्ति का आवरण हटा दिया जाय तो वह सामन्त-कालीन प्रेम ही रह जायगा। जहाँ नायक प्रेम तो कर बैठता है, किन्तु बड़ी रानी के भय से मिलने में स्वतन्त्र नहीं है।

चन्द्रावली में सामन्तीय व्यवस्था का प्रभाव

सामन्तीय व्यवस्था में एक से अधिक पत्नियों का औचित्य बतलाया गया

है। एक सामन्त अपनी बड़ी पत्नी की जानकारी में ही अन्य पत्नियाँ रखता था। बड़ी की आज्ञा मिलने पर छोटी का प्रेम उचित ठहराया गया है। चंद्रावली में भी यही स्थिति है। कृष्ण राधा के संकोच के कारण ही चंद्रावली से नहीं मिल पाते। चन्द्रावली को अपने पति पर पूर्ण विश्वास नहीं है। क्योंकि उसके पति की अन्य स्त्रियाँ भी हैं। चन्द्रावली का निम्न कथन देखिए—

"हमहिं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही।"

× × ×

"आओ मेरे झूंठन के सिरताज।
छल के रूप कपट मूरत की मिथ्यावाद जहाज॥"

× × ×

"हमारा तो कठोर व्रत है, हाय स्नेह लगाकर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो। बकरा जान से गया, पर खाने वाले को स्वाद न मिला। हाय!! यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह, खूब निबाह किया।"

एक सामन्त जिस प्रकार स्त्रियों से अनेकों वायदा करके भूल जाता है और वे ताना देती हैं; वही दशा चन्द्रावली की है। वह ताना देती हुई पूछती है यदि तुम प्रेम करने को स्वतंत्र नहीं थे, तो यह स्वाँग किया ही क्यों ?

"हाँ, क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती। लोग तो सात पैर संग चलते हैं तो जन्म भर निबाहा करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है।"

× × ×

"पहले मुसुकाय लजाइ कछू,
क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ के प्रीति,
निबाहन को क्यों कलाम कियो॥
'हरिचन्द' भये निरमोही इतै,
निज नेह को यों परिनाम कियो।

मन माँहि जो तोरन हूँ की हुती,
अपनाइ के क्यों बदनाम कियो ॥"

अन्त में स्वामिनी की आज्ञा से चन्द्रावली का कृष्ण से मिलन होता है। चन्द्रावली कहती है—

"सखियों ! मैं तो तुम्हारे दिये पीतम पाये हैं।"

उपर्युक्त अवतरणों में सामन्ती व्यवस्था के विषय में विषम समाज का चित्र प्रस्तुत हुआ है। जिसमें प्रेम में तड़पती हुई नायिका अपने प्रेमी से बिना बड़ी रानी की आज्ञा के नहीं मिल पाती। नायक ब्याह तो कर लाता है; किन्तु उसमें इतना साहस नहीं कि बड़ी रानी की आज्ञा के बिना वह उससे मिल सके। भारतेन्दु ने चन्द्रावली के रूप में सामन्तीय समाज में रनिवास की वेदना को अभिव्यक्त किया है किन्तु नव-जागरण और वैष्णव भक्ति के प्रवाह के कारण वे चन्द्रावली से ब्याह की सौगन्ध दिलवाते हैं। इससे सामाजिक पक्ष आ गया है। साथ ही चन्द्रावली को स्वकीया भी बना दिया है।

———

भारतेन्दु की नाट्यकला

प्रश्न २५—''भारतेन्दु ने 'चन्द्रावली' नाटिका द्वारा हिन्दी नाट्य साहित्य की अभिवृद्धि में योग दिया, उसमें एक ओर 'इन्दरसभा' की शैली का प्रभाव है तथा दूसरी ओर रस शैली का।''

उपर्युक्त मत से आप कहाँ तक सहमत हैं ? सप्रमाण उत्तर दीजिए।

उत्तर—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व न तो हिन्दी का कोई रंगमंच ही था, और न हिन्दी के रगमंचीय नाटक ही थे, नाटक-साहित्य का प्रारंभ 'हनुमन्नाटक' 'समयसार', 'प्रबोध-चन्द्रोदय', 'आनन्द-रघुनन्दन आदि' नाटकीय-काव्यों से हुआ। इनमें नाट्य-कला और रंगमंच के तत्वों का अभाव था। सत्रहवीं शताब्दी तक हिन्दी के रंगमंचीय नाटक नहीं मिलते। जनता के बीच रास-लीला, रामलीला, कठपुतली के नाच, नकल, स्वांग, इंदरसभा आदि रंग-मंचीय रूप प्रचलित थे। इनमें कथा, साहित्यकता तथा रस-शैली के शास्त्रीय तत्व नहीं थे। पारसी कम्पनियों के नाटक कला और साहित्य एवं रस की दृष्टि से भ्रष्ट नाटक थे। 'शकुन्तला' नाटक में दुष्यन्त को खेमटें वालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटककर नाचने और 'पतरी-कमर-बल-खाय' गानों में नाटकीय आत्मा की हत्या हो रही थी। संस्कृत से अनुवादित नाटक भी भ्रष्ट थे। 'नाट्येनौयविश्व' अर्थात् पात्र बैठने का नाट्य करता है—का अनुवाद 'राजा नाचता हुआ बैठता है।'—मिलता है। सैयद आगा हसन अमानत की 'इन्दर सभा' पहला गीति-नाट्य है, जिसमें रंगमंचीय तत्व और आधुनिक नाटकों का प्रारूप मिलता है। इसका रचनाकाल सन् १८५३ है। इसके पश्चात् भारतेन्दु के नाटकों से ही हिन्दी-नाटकों का सम्यक् प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु की 'चन्द्रावली' नाटिका पहली मौलिक रचना है। इसका रचना-काल सन् १८७६ है। यह 'इन्दरसभा' की नाट्य-कला का विकसित रूप है। एक ओर इसमें जहाँ 'इन्दरसभा' की शैली है, वहाँ दूसरी ओर रस

शैली का अभाव है। भारतेन्दु साहित्यिक व्यक्ति थे, उन्होंने अपने नाटकों में जहाँ एक ओर प्राचीन-शास्त्रीय परंपरा तथा अपने पूर्व के नाटकों से प्रभाव ग्रहण किया है, वहाँ नवीन प्रभाव को भी ग्रहण किया है। 'चन्द्रावली' नाटिका नाट्य-शास्त्र के नियमों की कसौटी पर पहला सफल नाटक है। अतः हिन्दी नाट्य-साहित्य की अभिवृद्धि में इस नाटिका का महत्वपूर्ण योग है।

'अमानत' कवि ने अपने आश्रयदाता वाजिद अली शाह के कहने पर 'इंदर-सभा' नामक गीति-नाट्य की रचना की। इसकी भाषा विशुद्ध हिन्दी न होकर उर्दू और हिन्दी का मिश्रण है। उर्दू भी सरल है। इसको खेलने के लिए लखनऊ के कैसरबाग में रंगमंच तैयार किया गया। स्वयं वाजिद अली शाह ने इसमें इन्द्र का अभिनय किया।

रंगमंचीय गीति-नाट्य होने के कारण 'इन्दर सभा' का विशेष महत्व है। 'चन्द्रावली नाटिका' को इसी के विकास क्रम में ग्रहण करना चाहिए। 'इन्दर सभा' के शिल्प-विधान में रस-शैली की साहित्यिक नाटकों की प्रणाली का अनुकरण पाया जाता है। 'चन्द्रावली' रस-शैली की साहित्यिक सफल नाटिका है। 'चन्द्रावली' के प्रारम्भ में मंगलाचरण, नांदी-पाठ, सूत्रधार, प्रस्तावना का रूप इसमें निर्देशक द्वारा प्रस्तुत हुआ है। चन्द्रावली नाटिका में कवि परिचय, कथावस्तु आदि की सूचना सूत्रधार और पारिपार्श्विक के वार्तालाप में मिलती है। इसमें निर्देशक या अन्य कोई पात्र यह सूचना अपने मुख से देता है।

'इन्दर सभा' के प्रारम्भ का कविता-पाठ नाटक की प्रकृति, रंगमंच-शिष्टाचार और कतिपय लक्षणों पर अच्छा प्रकाश डालता है—

सभा में दोस्तों इन्दर की आमद-आमद है।
परी-जमालों के अफसर की आमद-आमद है।
दो जानू बैठो करीने के साथ महफिल में।
परी के देव के लश्कर की आमद-आमद है।

इसके पश्चात् राजा इन्द्र प्रवेश करके स्वयं अपना परिचय देते हैं—

राजा हूँ मैं कौम का इन्दर मेरा नाम।
× × ×
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार।
तख्त बिछायो जगमगा जल्दी से इसग्रार।

इसके पश्चात् आश्रयदाता की प्रशंसा करती हुई पुखराज परी नाचना प्रारम्भ करती है। वह छह गाने गाती है। जिसमें ठुमरी, बसन्त, होली, गजल आदि होते हैं। गाने निम्नकोटि के हैं। इनमें 'चन्द्रावली' की तरह उच्चकोटि का गीति-काव्य नहीं है। 'इन्दर सभा' के गाने मजदूरों, कुंजड़ों तथा पान-तम्बाकू वालों को ही अच्छे लग सकते हैं।

'इन्दर सभा' विलासता के वातावरण को उद्दीप्त करती है। पुखराज का अभिनय करने वाला लड़का हाव-भाव से आँखें मटका कर कहता है—

बोसे जो तलब मैंने किये हँस के ये बोले।
आशिक को जहर गैर को मिसरी की दो डली॥

इस पर दर्शक मंडली आनन्द में उछलकर वाह-वाह करने लगती है। प्रेम लीला के अश्लील स्वरों से रंगमंच गूँज उठता है।

इस प्रकार 'इन्दर सभा' की कथावस्तु का विकास होता है। निर्देशक जब यह देखता है कि दर्शक-मंडली एक ही व्यक्ति के नाच गाने से उकता गई है, तब दूसरा व्यक्ति आकर अपना कार्य प्रारम्भ करता है।

'इन्दर सभा' पहला गीति-नाट्य अवश्य है, किन्तु वह नाट्यकला का न कोई स्वस्थ रूप ही प्रस्तुत करता है और न समाज के लिए कोई उद्देश्य ही प्रस्तुत करता है। भारतेन्दु की 'चन्द्रावली' पर 'इन्दर सभा' की शैली की छाया चाहे भले ही हो, किन्तु वह नाट्यकला के शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार रस-शैली की सफल नाटिका है। उसकी विषय-वस्तु वल्लभाचार्य की पुष्टि-मार्गीय रागानुगा प्रेम-लक्षणा भक्ति का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है। उसका वस्तु-विन्यास नाटिका के शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार सफल है। 'चन्द्रावली' को शास्त्रीय कसौटी पर अन्यत्र कस चुके हैं। कुछ भी हो 'चन्द्रावली' का हिन्दी नाट्य-साहित्य की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योग है।

प्रश्न २६—भारतेन्दु की नाट्यकला का विश्लेषण करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं का निरूपण कीजिए।

उत्तर—भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी नाट्य-साहित्य के जन्मदाता थे। भारतेन्दु जी से पूर्व हिन्दी नाट्य साहित्य जीवन और यथार्थ से बहुत दूर था।

जनता में नाटकों के प्रति कितनी रुचि थी, इस विषय में भारतेन्दु जी ने स्वयं लिखा है—

"·····धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है, इतना भी नहीं जानते थे।·····"

उपर्युक्त स्थिति में भारतेन्दु जी ने हिन्दी-नाट्य कला को नये सिरे से सँवार कर उसे विकसित किया। उन्होंने अनुवाद, रूपान्तर तथा मौलिक नाटकों को लिखकर सफल पथ-प्रदर्शन किया। प्राचीन-संस्कृत परिपाटी को तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुकूल ढालकर उनमें पाश्चात्य उपयोगी तत्वों का समावेश किया। उन्होंने नाटकों की विषय-वस्तु को पौराणिक इतिवृत्त से निकालकर राजनीति, देश-प्रेम, समाज-सुधार और वर्तमान-स्थिति आदि विविध-विषयों तक विस्तृत किया। इस प्रकार भारतीय नाट्यकला और पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र को नवीन शैली के उपयोगी तत्वों को लेकर उन्होंने अपनी नाट्यकला को मौलिक रूप प्रदान किया। भारतेन्दु जी के नाटकों में तत्कालीन युग सजीव हो उठा है। इस समय धर्म, संस्कृति और समाज विकृतियों से भरा हुआ था। जनता जातिगत रूढ़ियों, पाखंडों, अंधविश्वासों और विकारों से ग्रस्त थी। भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों में इन सब पर करारा व्यंग्य किया और देश तथा जीवन की विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया।

भारतेन्दु जी के नाटकों को आदर्शवादी और यथार्थवादी दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'नीलदेवी', 'चन्द्रावली' और 'सतीप्रताप' आदर्शवादी तथा शेष यथार्थवादी नाटक हैं। उनके यथार्थवादी नाटक तत्कालीन यथार्थ स्थिति का व्यापक और पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं।

नाटक के मुख्य तत्व वस्तु-चयन और वस्तु विन्यास, चरित्र-चित्रण, संवाद और भाषा, देश-काल और अभिनेयता हैं। हम इन्हीं के आधार पर भारतेन्दु की नाट्यकला की विशेषताओं का विश्लेषण और विवेचन करेंगे।

वस्तु-चयन और वस्तु-विन्यास

वस्तु-चयन और वस्तु-विन्यास में भारतेन्दु जी युग के यथार्थ से प्रभावित हैं। उनके नाटकों में समस्याएँ और परिस्थितियाँ सजीव हो उठी हैं। 'चन्द्रावली'

और 'विद्यासुन्दर' को छोड़कर शेष सभी नाटकों में युग और परिस्थितियों की पुकार है। 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत दुर्दशा' और 'अंधेर-नगरी' में विषय-वस्तु का चयन तत्कालीन जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से किया गया है। 'प्रेम-जोगिनी' में तत्कालीन बनारस का सजीव चित्रण है। 'भारतजननी' में भारत की दयनीय दशा का चित्रण है। 'नीलदेवी' और 'सतीप्रताप' में तत्कालीन नारी की एक आदर्श चेतना सामने आती है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक का कथानक पौराणिक है। अपने नाटकों में वस्तु-चयन के सम्बन्ध में भारतेन्दु का निम्न कथन दृष्टव्य है—

"नाटकों में समाज, संस्कार और देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्त्तव्य है। यथा शिक्षा की उन्नति, विवाह-सम्बन्धी कुरीति-निवारण अथवा धर्म-सम्बन्धी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि। किसी प्राचीन कथानक का इस बुद्धि से संगठन हो कि उससे देश की कुछ उन्नति हो।"

× × ×

"देश वत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों व देखने वालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है।"

कथानक की दृष्टि से भारतेन्दु के नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक और तत्कालीन सामाजिक हैं। उनमें यथार्थवादी दृष्टिकोण से समाज-संस्कार और देश-प्रेम की विचारधारा प्रवाहित हुई है। सर्वत्र पाखंड, अविद्या, अंधविश्वास और पराधीनता से मुक्ति पाने की बलवती प्रेरणा है।

वस्तु-चयन की दृष्टि से भारतेन्दु के नाटकों में सरलता और स्वाभाविकता है। वस्तु-चयन और वस्तु-संविधान के सम्बन्ध में भारतेन्दु जी का निम्न कथन द्रष्टव्य है—

"अब नाटकादि दृश्य-काव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषित काव्य सहृदय सभ्य-मंडली को नितान्त अरुचिकर हैं। इसलिए स्वाभाविक रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदयग्राहिणी है। इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकीय दृश्य-काव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है।"

वस्तु-संगठन में भारतेन्दु ने प्राचीन और नवीन दोनों ही परम्पराओं के उपयोगी तत्त्वों का समन्वय कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। वस्तु-

विन्यास छोटे-छोटे दृश्यों में है। एक के बाद दूसरा दृश्य शीघ्र ही आकर कथा-वस्तु को गति प्रदान करता है। वस्तु-संगठन की दृष्टि से 'नीलदेवी' उत्कृष्ट नाटक है। प्रत्येक दृश्य एक दूसरे से गुम्फित होकर कथानक की बड़ी स्वाभाविकता से विकसित करता है। दर्शकों में जिज्ञासा बराबर बनी रहती है। कुछ नाटकों में प्राचीन परम्परा के अनुसार जहाँ प्रस्तावना, मंगलाचरण, नांदीपाठ, भरतवाक्य आदि का प्रयोग हुआ है, वहाँ नवीन पाश्चात्य नाट्य परम्परा के कारण कुछ नाटकों में युद्ध, मृत्यु, श्मशान, चुम्बन, आलिंगन आदि दृश्य भी दिखाये गये हैं। 'भारत दुर्दशा' का अन्त दुखान्त होता है, जो प्राचीन परम्परा के विरुद्ध है। रंगमंच की दृष्टि से भारतेन्दु के नाटकों का वस्तुसंगठन सरल एवं सुसंगठित है। वे उद्देश्य की परिणति को दृष्टि में रखकर कथा का विन्यास करते हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु के नाटकों में कथावस्तु और वस्तु-विन्यास यथार्थवादी है। इसमें प्राचीन और नवीन नाट्यशास्त्र की परम्पराओं का स्वस्थ समन्वय है।

चरित्र-चित्रण

भारतेन्दु के नाटकों में पात्र-योजना और चरित्र-चित्रण भारतीय नाट्य-शास्त्र की पद्धति पर खरा नहीं उतरता। उनके सभी नाटकों के नायक न तो उच्च कुलोद्भव ही हैं और न वे आदर्श महापुरुष ही। वे आदर्श भी हैं और अधम भी। यथार्थवादी नाटककार होने के कारण भारतेन्दु के चरित्र आदर्शों की गढ़ी मढ़ाई प्रतिमा मात्र नहीं हैं। उनसे यथार्थ जीवन का रूप मिलता है। उनके नाटकों के पात्र तत्कालीन यथार्थ-जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों के नायक ही आदर्श नायक हैं। कई नाटकों का प्रतीकात्मक चरित्र तत्कालीन प्रवृत्तियों या वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण प्राय: वर्गगत विशेषताओं को लिये हुए हैं।

भारतेन्दु के नाटकों के चरित्रों को आदर्श-चरित्र, यथार्थ चरित्र, और प्रतीक चरित्र तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' का राजा ऐसे राजाओं का प्रतीक है, जो जन्म भर पाप करते हैं और अपने अधर्म की धर्म रूप में व्यवस्था पंडितों से ले लेते हैं। इसी प्रकार मंत्री और साधु भी अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'भारत-दुर्दशा' के सारे

चरित्र प्रतीकात्मक हैं। 'अंधेर-नगरी' में चौपट्टराज के चरित्र के रूप में वर्तमान राजाओं के अन्धेरपूर्ण न्याय पर तीखा व्यंग्य है। भारतेन्दु के नाटकों में राजा, पंडित, साधु, शिक्षित, देश-भक्त, दूकानदार आदि सभी वर्गों के चरित्र मिलते हैं जो अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'सत्यहरिश्चन्द', 'नीलदेवी, 'सती-प्रताप', 'विद्यासुन्दर' और 'चन्द्रावली' के नायक आदर्श नायक हैं। राजा हरिश्चन्द का चरित्र सत्यवादिता, धर्मनिष्ठा और कर्त्तव्य-परायणता का प्रति-रूप है। नीलदेवी के नायक सूर्यदेव के चरित्र में क्षत्रियों के खुलकर युद्ध करने की जातिगत विशेषता मिलती है। 'चन्द्रावली' में चन्द्रावली के चरित्र में प्रेम की अतिशयता है।

भारतेन्दु के पात्रों में नारी पात्र प्रायः कम हैं। समस्त नाटकों में केवल छह ही प्रमुख नारी चरित्र हैं। 'चन्द्रावली', 'नीलदेवी' और 'सतीप्रताप' तो नायिका प्रधान ही नाटक हैं। भारतेन्दु के नाटकों की नारियाँ त्याग, पतिपरायणता, दया, ममता, करुणा, प्रेम आदि विशेषताओं को लेकर सामने आती हैं।

भारतेन्दु के नाटकों के आदर्श पात्र शायद सामान्य जीवन में न मिलें, किन्तु यथार्थ पात्र हमारे दैनिक जीवन में चारों ओर दिखाई पड़ते हैं; किन्तु उनके अलौकिक चरित्रों में भी स्वाभाविकता है। भारतेन्दु ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में पात्रों के मनोभावों का सफलता से चित्रण किया है। उन्होंने पात्रों के चरित्र की स्वाभाविकता पर बल दिया है। वे पात्रों के चरित्र के अच्छे और बुरे दोनों ही पक्षों का उद्घाटन करते हैं। वे पात्रों के चरित्र को स्वाभाविक और सजग बनाने के लिये विशेष तत्पर रहते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु के नाटकों का चरित्र-चित्रण यथार्थ, सजीव और स्वाभाविक है। उनके तत्कालीन जीवन और परिस्थितियों पर आधारित नाटकों के चरित्र गत्यात्मक हैं। उनमें वर्तमान यथार्थवादी नाट-कीय चरित्र-चित्रण का बीज रूप मिलता है।

संवाद और भाषा प्रवाह

भारतेन्दु ने एक ओर जहाँ नाट्यकला का ढाँचा खड़ा किया, वहाँ दूसरी ओर भाषा को भी व्यवस्थित रूप प्रदान किया। भारतेन्दु के नाटकों के संवादों में पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उभारने की शक्ति है। प्रायः सभी नाटकों में उन्होंने संवादों के द्वारा चरित्र-निर्माण किया है।

भारतेन्दु के नाटकों में जिज्ञासा उत्पन्न करने की शक्ति है। कथानक का प्रारम्भ प्रायः ऐसे ही संवादों से होता है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

"यही तो बड़ा आश्चर्य है कि इतने राजपुत्र आये पर इनमें मनुष्य एक भी नहीं आया।" —'विद्यासुन्दर' के प्रथम अंक का प्रथम दृश्य

"यहाँ सत्य भय एक के............।"

—'सत्य हरिश्चन्द्र' के प्रथम अंक का प्रारम्भ

× × ×

"जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं।"

—सत्य हरिश्चन्द्र के प्रथम अंक के अन्त में

कुछ संवाद ऐसे भी हैं जो, अघटित घटना की सूचना देते हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' का निम्न कथन द्रष्टव्य है :—

"............तो अब अन्तिम उपाय किया जाय? हाँ तक्षक को आज्ञा दें। अब और कोई उपाय नहीं है।"

भारतेन्दु के संवाद आगे की घटना की सूचना भी देते हैं :—

दैव सर्प दंशित भये भोगत कष्ट अनेक।

(सत्य हरिश्चन्द्र—अंक चतुर्थ)

इस प्रकार भारतेन्दु के नाटकों के संवाद कथा को गुम्फित करके चरित्र निर्माण तथा वातावरण के सृजन में सहायक हैं। उनके संवादों में कुछ दोष भी हैं। कहीं-कहीं तो वे लम्बे-लम्बे भाषण के रूप में हो गये हैं और कहीं-कहीं पर आवश्यकता से अधिक लम्बे भी हो गये हैं। चन्द्रावली का कथन कई पृष्ठों में है। 'अंधेर-नगरी' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' के संवाद सुन्दर, सशक्त, सजीव और प्रगतिशील हैं। नाटकों में संवाद-योजना के सम्बन्ध में भारतेन्दु का निम्न कथन द्रष्टव्य है—

"ग्रन्थकर्त्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रों की बातचीत विरचित करे कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उनकी बात भी विरचित हो—थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक-जीवन की महौषधि है।"

भारतेन्दु जी के नाटकों की भाषा में निरालापन और पात्रानुकूलता है। उनका पंडित पात्र जहाँ पंडिताऊ भाषा में बोलता है, वहाँ मुसलमान पात्र

उदू मिश्रित भाषा बोलता है। ग्रामीण पात्र अपनी बोली बोलता है। वीर रस के प्रसंगों में भाषा ओजस्विनी हो गई है।

भारतेन्दु जी के प्रारम्भिक नाटकों की भाषा शिथिल है, किन्तु उनके नाटकों में उत्तरोत्तर भाषा का परिमार्जन होता चला गया। 'विद्यासुन्दर' भारतेन्दु जी का पहला नाटक है। इसकी अपेक्षा 'नीलदेवी' की भाषा में पर्याप्त परिमार्जन है। 'नीलदेवी' की भाषा सजीव है। उसमें नाटकीयता है।

भारतेन्दु जी के प्राय: सभी नाटकों की भाषा सरल और बोलचाल की भाषा है। भाषा में मुहावरों की भरमार हो मिलती है। चलताऊ शब्दों और मुहावरों का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। सभी नाटकों की भाषा में चुलबुलापन है। संवादों की भाषा व्यंग्यात्मक है। इससे नाटकों में रोचकता और अभिनेयता आ गई है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु के नाटकों के संवाद और भाषा रंगमंच की दृष्टि से सफल हैं।

हास्य और व्यंग्य

भारतेन्दु के नाटकों में हास्य और व्यंग्य का शिष्ट और सटीक रूप मिलता है। उनमें संस्कृत परम्परा के फूहड़ हास्य का सर्वथा अभाव रहा है। हास्य और व्यंग्य तत्कालीन यथार्थ परिस्थितियों को पूर्ण रूप से उभार देता है।

भारतेन्दु ने नाटकों में स्थान-स्थान पर समाज की कुरीतियाँ, रूढ़िगत संस्कारों, धर्माडम्बरों, मिथ्याविश्वासों, पारस्परिक कलह और राजाओं के निरंकुशता पर तीखा व्यंग्य मिलता है। उनके सटीक व्यंग्य से समाज की कोई भी कुरीति अछूती न रही। उन्होंने समाज, सरकार और देश की कुरीतियों पर तीखे प्रहार किये।

भारतेन्दु के प्राय: सभी नाटकों में हास्य और व्यंग्य के तत्व मिलते हैं। किन्तु 'भारत-दुर्दशा', 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत-जननी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी' और 'प्रेम जोगिनी' में तो हास्य और व्यंग्य का बहुत ही निखरा हुआ रूप मिलता है। कुछ उदाहरण लीजिए—

"कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्वकृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं? तो उन्होंने उत्तर दिया जैसे शतरंज के राजा, जहाँ चलाइये

वहाँ चलें……राजा और देव बराबर के होते हैं, वे जो करें, सो देखते चलो, बोलने की तो जगह ही नहीं।"

—विषस्य विषमौषधम्

"……हा, हा, हा! कुछ पढ़े-लिखे मिलकर देश-सुधार चाहते हैं। हा, हा, हा, हा! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे। ऐसे लोगों का दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को हुक्म दूँगा कि इनको 'डिसलोयलटी' में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मित्र हो उसको उतना बड़ा खिताब दो। हैं! हमारी पौलिसी के विरुद्ध करते हैं।"

—भारत दुर्दशा

'अंधेर नगरी' में राजाओं की मूढ़ता और निरंकुशता पर तीखा व्यंग्य और हास्य है। निम्न उदाहरण लीजिए—

"जात ले जात! एक टका दो हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायें और ब्राह्मण को धोबी कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था कर दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें, टके के वास्ते ब्राह्मण को मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्टान, टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बना दें। वेद, धर्म, कुल, मर्जाद, सच्चाई, बड़ाई सब टके सेर।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु जी के प्रायः समस्त नाटकों में हास्य और व्यंग्य का शिष्ट रूप मिलता है। व्यंग्य सर्वत्र ही सटीक और तीखे हैं। हास्य और व्यंग्य अभिव्यक्ति को कलात्मक रूप प्रदान करता है। वह यथार्थ को सजीवता प्रदान करता है। व्यंग्यों में गहरी व्यापकता और तीखी चुभन है।

गीत-योजना

भारतेन्दु के नाटकों में गीतों का आधिक्य है। कुछ पात्र तो पद्य में ही वार्तालाप करते हैं। परन्तु सभी गीत प्रायः कथा-प्रसंग के अनुकूल भावों को उद्दीप्त करने वाले, व्यंग्य को तीखा करने वाले, मनोरंजन और रोचकता में सहायक तथा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन करने वाले हैं।

'सत्य हरिश्चन्द्र' में वैतालिकों का गाया हुआ गीत छोटा और प्रसंग के अनुकूल है। वह राजा के चरित्र पर प्रकाश डालता है। 'प्रेम जोगिनी' के दूसरे गर्भाङ्क के पद्यमय संवाद नाटकीय, स्वाभाविक और कथा को गति प्रदान करने वाले हैं। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में कथा-प्रसंग के बीच-बीच में गाये हुए छोटे-छोटे पद्य व्यंग्य को उभार देते हैं—

यहि असार संसार में, चारि वस्तु है सार।
जुआ, मदिरा, माँस अरु, नारी संग विहार॥

'नीलदेवी' कुछ गीत, संगीत और साहित्य की दृष्टि से बहुत ही उत्कृष्ट हैं। उदाहरण के लिए निम्न गीत लीजिये—

"सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।"
× × ×
प्यारी बिन कटत न कारी रैन।"

गीति-नाट्य 'भारत जननी' के गीत बहुत लम्बे हैं। 'चन्द्रावली' में गीतों की अधिकता है। इनसे कथानक मे शिथिलता आ गई है। गीतों की अधिकता के कारण 'चन्द्रावली' नाटिका काव्य नाट्य ही बन गई है।

निष्कर्ष रूप में इतना ही कहा जा सकता है कि भारतेन्दु के नाटकों के गीत प्रसगानुकूल, भावों को उद्दीप्त करने वाले, कथा-गति-प्रेरक और पात्रों के चरित्र की विशेषताओं को उभारने वाले हैं। जहाँ उनकी अधिकता है या अधिक लम्बे हो गये हैं, वहाँ रंगमच की दृष्टि से उनमें दोष आ गया है। ऐसे गीत कथा की गति में अवरोध उत्पन्न करते हैं।

अभिनेयता

भारतेन्दु ने अपने प्रायः सभी नाटक रंगमंच की दृष्टि से लिखे। उनके नाटक अनेकों बार खेले जा चुके हैं। भारतेन्दु जी के सभी नाटकों का दृश्य-विधान सरल है। उनके अधिकांश नाटकों में एक अंक में ही कई गर्भाङ्क (दृश्य) होते हैं। 'विद्या सुन्दर', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर-नगरी', 'नीलदेवी' और 'भारत-दुर्दशा' का दृश्य-विधान, रंगमंच की दृष्टि से सफल हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में श्मशान के दृश्य को छोड़कर शेष अंकों का दृश्य-विधान सरल है। अन्तिम दो दृश्यों की 'लम्बाई अवश्य रङ्गमञ्च की दृष्टि से

दोषपूर्ण है। 'चन्द्रावली', 'भारत-जननी' और 'विषस्य विषमौषधम्' अभिनय की दृष्टि से निम्न कोटि के हैं। इनमें गीतों का आधिक्य और लम्बे सम्वाद रङ्गमञ्च की दृष्टि से दोषपूर्ण हैं।

रङ्गमञ्च की दृष्टि से अपने सफल नाटकों में भारतेन्दु जी चरित्रानुरूप वेश-भूषा और पात्रों की नाटकीय क्रियाओं का निर्देश दे देते हैं। भारतेन्दु के नाटकों के रङ्गमञ्चीय-विधान पर बंगला तथा पारसी रङ्गमञ्च का बहुत प्रभाव पड़ा। पात्रों का आधिक्य तथा गीतों की बहुलता प्रायः उनके सभी नाटकों में मिलती है। यह दोष कुछ नाटकों में बहुत अधिक हो गया है।

भारतेन्दु के नाटकों में आंगिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय और सात्विकाभिनय सर्वत्र मिलता है। भारतेन्दु जी हिन्दी के पहले नाटककार थे, जिन्होंने नाटकों को रङ्गमञ्चीय रूप प्रदान किया। आधुनिक नाटककार भारतेन्दु की ही परम्परा को अपनाकर आगे बढ़ रहे हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु जी ने अपनी नाट्यकला को अधिक से अधिक जनरूप प्रदान किया। उन्होंने रङ्गमञ्च की दृष्टि से नाटकों की रचना की। उनके नाटकों की भाषा जन भाषा है और रङ्गमञ्चीय विधान सरल है। उनके नाटकों में जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। प्राचीन कसौटी के जटिल नियमों के प्रति उनका आग्रह नहीं था। उन्होंने संस्कृत की शास्त्रीय नाट्य परम्परा और पाश्चात्य नाटकों की नवीनकला से उपयोगी तत्वों को लेकर अपनी नाट्यकला का निर्माण किया। अतः उनकी नाट्यकला में सर्वत्र मौलिकता है। इस प्रकार वे एक नई नाट्यकला के जन्मदाता हैं। उन्होंने अपने नाटकों में अनेक प्राचीन पद्धतियों को अपनाया और अनेकों को छोड़ा। उन्होंने 'प्रख्यात' कथावस्तु को छोड़कर अपने नाटकों में जन-जीवन से कथानक का चयन किया। उनके नाटकों के नायक आदर्श की गढ़ी-गढ़ाई प्रतिभा न होकर यथार्थ जीवन से चयन किये गये हैं। संस्कृत नाट्य-शास्त्र के अनेक वर्जित दृश्यों को उन्होंने अपने नाटकों में स्थान दिया। इस प्रकार भारतेन्दु की नाट्य-कला सर्वथा नवीन और विकसित है।

● मुद्रक : विशाल प्रिंटर्स, कोटगंज, इलाहाबाद-३